जापान का हाल



जापान का हाल

लेखक

(सरस्वती-सम्पादक)

पण्डित देवीदत्त शुक्ल

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९४२

चौथा संस्करण]   [मूल्य ||)|||

Published by
K. Mittra.
The Indian Press, Ltd.,
Allahabad.

Printed by
A. Bose,
at The Indian Press, Ltd.,
Benares-Branch.

भूमिका

हिन्दी-साहित्य उन्नति के पथ पर है। उसका साहित्य चारों ओर से पूर्ण किया जा रहा है। यह छोटी पुस्तक भी इसी विचार से लिखी गई है। हिन्दी में नवयुवकों के लिए जो साहित्य सुलभ है उसमें अभी बहुत कमी है। उनके लिए भी भिन्न-भिन्न विषयों की उनके अनुरूप उपयोगी पुस्तकें होनी चाहिएँ। इस पुस्तक की रचना इसी विचार के अनुसार हुई है। जापान के सम्बन्ध में जितनी बातें हमारे नवयुवकों को जानना आवश्यक है वही इसके भिन्न-भिन्न अध्यायों में लिखने का प्रयत्न किया गया है।

जापान के सम्बन्ध में अँगरेज़ी में अँगरेज़ों और जापानियों की लिखी हुई कई पुस्तकों की मदद से यह पुस्तक लिखी गई है। आशा है, इस पुस्तक से हमारे नवयुवकों का केवल मनोरञ्जन ही नहीं होगा, किन्तु उनको उत्साह भी प्राप्त होगा। जापान के अभ्युदय का पाठ पढ़कर वे भी अपने देश का प्रेम करना जानेंगे, साथ ही अपनी प्राचीन सभ्यता की रक्षा करना भी सीखेंगे।

देवीदत्त शुक्ल

विषय-सूची

जापान का हाल

पहला अध्याय

उपोद्घात

जापान की गिनती संसार के प्रधान शक्ति-शाली राष्ट्रों में है। यह बड़ा भाग्यशाली देश है। यह अपने इतिहास के आरम्भ-काल से स्वाधीनता का उपभोग कर रहा है। पराधीनता की साँसत इसे कभी नहीं सहनी पड़ी। संसार में यह अपने ढङ्ग का एक अनूठा देश है। ऐसे देश की कथा जहाँ पराधीन जातियों के लिए एक पाठ है, वहाँ उन्नत जातियों के लिए एक पहेली है। क्योंकि साठ वर्ष पहले जिस जापान से उन्होंने बल-प्रदर्शन कर मनमाने अधिकार प्राप्त किये थे, अब उसी का मुँह देखकर उन्हें चलना पड़ता है।

१९वीं सदी के मध्य में जापान एक साधारण टापू-मात्र था। स्वयं एशिया-खण्ड में वह एक नगण्य देश था। परन्तु इस समय उसी जापान की संसार के सबसे बड़े तीन राज्यों

में गिनती होती है। नौ-बल में ग्रेट ब्रिटेन और युनाइटेड स्टेट्स के बाद उसी का नंबर है। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में उसकी राय का वज़न माना जाता है और संसार के बड़े बड़े राज्य तक उससे मित्रता बनाये रखने को उत्सुक रहते हैं।

जापान की उन्नति देखकर संसार के अन्य देश चकित हैं। क्योंकि एशियाई देशों में एक जापान ने ही पाश्चात्यों के संसर्ग से लाभ उठाया है। उनके संसर्ग में आने पर वह चुप नहीं बैठा रहा। किन्तु उसने उनके ही समान बलवान् बनने का प्रयत्न किया। पिछले ५०-६० वर्षों के भीतर उसने जो उन्नति की है उससे प्रकट होता है कि जापानी लोग जीवित जाति के रहे हैं। इसी से वे पाश्चात्यों की अच्छी अच्छी बातें सीखकर समुन्नत हो सके हैं।

जिस समय जापान का पाश्चात्यों से सङ्घर्ष हुआ था उस समय वहाँ पुराने समय की ही सभ्यता का प्रचार था। अतएव जापानी भी अन्य एशियाई देशों के निवासियों की भाँति उनके आगे न ठहर सके। यह हाल देखकर वे सजग हो गये। अन्य एशियाई देशों की भाँति आलस्य में नहीं पड़े रहे। फल यह हुआ कि जापान आज संसार का एक श्रेष्ठ राज्य है।

सन् १८५४ में अमरीका के कोमोडोर पेरी ने अपने जंगी बेड़े की शक्ति का प्रदर्शन कर जापानियों को व्यापारिक सन्धि करने को बाध्य किया था। तभी से जापान के वर्तमान

अभ्युदय का श्रीगणेश समझना चाहिए। विदेशियों के सङ्घर्ष से जापानियों को अपनी निर्बलता का पता लग गया। अतएव वे पाश्चात्यों के समान बल-सम्पन्न होने के लिए तत्काल सचेत हो गये।

पाश्चात्य देशों को आदर्श मानकर जापान को सरकार ने देश में नये सुधारों का प्रचार किया। उच्च श्रेणी के लोगों के वंशगत अधिकार कम कर दिये गये। निम्न श्रेणी के लोगों के लिए उन्नति करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया गया। डाक, तार, रेल आदि जारी किये गये। धार्मिक सहिष्णुता की घोषणा की गई। योरपीय वर्ष-मान स्वीकार किया गया, योरपीय पोशाक पहनने के लिए प्रोत्साहन दिया जाने लगा, योरपीय विज्ञान की, विशेषकर व्यावहारिक विज्ञान की, पढ़ाई की व्यवस्था की गई। राष्ट्रीय शिक्षा प्रचलित का गई। अँगरेज़ी पढ़ना अनिवार्य और शुल्क-रहित कर दिया गया। पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र का प्रचार किया गया। क़ानून की शिक्षा की भी व्यवस्था की गई। भिन्न-भिन्न पाश्चात्य देशों के अनुकरण पर नये-नये क़ानून बनाये गये। शासन और सेना का नये सिरे से सङ्गठन किया गया। रईसों की पद-मर्यादा निर्दिष्ट कर दी गई। सरकारी नौकरियाँ योग्यतानुसार मिलने लगीं। नये सुधारों के प्रचलन से जनता जाग्रत हुई। अतएव सन् १८८९ में प्रतिनिधि-मूलक शासन-व्यवस्था का प्रचलन किया गया। इस प्रकार जापान घोर परिश्रम कर थोड़े ही दिनों के भीतर एक समुन्नत राष्ट्र हो गया।

जापान के जङ्गी बेड़े और स्थल-सेना दोनों की बड़ी उन्नति हुई है। इन्हीं की बदौलत वह आज संसार की प्रधान शक्तियों में गिना जाने लगा है। संसार में इस समय ग्रेटब्रिटेन, युनाइटेड स्टेट्स आदि ईसाई राष्ट्र ही शक्तिशाली हैं। ग़ैर-ईसाई राष्ट्रों में एक जापान ही ऐसा है जो उनकी समानता का दावा कर सकता है। व्यवसाय के क्षेत्र में भी वह उपर्युक्त महा-शक्तियों का एक भयङ्कर प्रतिद्वन्द्वी हो गया है। युद्ध के अव-सर पर वह 'चालीस लाख शिक्षित सेना एकत्र कर सकता है। उसके व्यापारी जहाज़ संसार के सभी बड़े-बड़े बन्दरगाहों में उसका राष्ट्रीय झंडा उड़ाते दिखाई देते हैं। और यह मर्तबा उसने पाश्चात्य सभ्यता को अपनाकर प्राप्त किया है।

परन्तु पाश्चात्य सभ्यता का जापान की सभ्यता पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। वहाँ के सामाजिक जीवन, सदाचार तथा उद्योग-धन्धों की पद्धति में पाश्चात्य सभ्यता का जो प्रभाव पड़ा है और जो परिवर्तन दिखाई देते हैं उन सबमें उसकी अपनी छाप अलग लगी हुई है। अपनी समुन्नति के लिए जापानियों ने अपने जीवन में जो नई बातें जारी की हैं उन्हें जापानी रङ्ग से रँग लिया है। यह सही है कि सरकारी नौकरों को पाश्चात्यों की वर्दी में रहना पड़ता है, परन्तु नौकरी के बाद घर में वे अपनी देशी पद्धति में ही रहते हैं।

जहाँ एक ओर टोकिओ में तथा दूसरे बड़े-बड़े नगरों में पाश्चात्य देशों जैसी शिक्षा-संस्थायें, थियेटर, होटल, अस्पताल

जैसी संस्थायें जाति के जीवित रहने का प्रमाण दे रही हैं, जहाँ याकोहामा में जापानी जहाज़ी बेड़ा और स्थल-सेना उसकी शक्ति की प्रधानता का घोष कर रही है, वहाँ दूसरी ओर देहात में अभी बीसवीं सदी का प्रकाश नहीं पहुँचा है, वही पुरानी बातें, वही तिथि-त्योहार और वही जीवन का ढङ्ग जो सदियों से चला आता है, आज भी मौजूद है। यदि एक ओर एक बौद्ध-मन्दिर में पुराने ढङ्ग के धार्मिक वेष-भूषा में कुछ पुरोहित भक्त जनों के साथ पुराने ढङ्ग का कोई धार्मिक जुलूस निकाल कर धार्मिक उत्सव कर रहे हैं तो दूसरी ओर सरकार के जङ्गी जहाज़ी बेड़ों के कारख़ानों में आधुनिक से आधुनिक ढङ्ग का कोई बड़ा से बड़ा जङ्गी जहाज़ बन रहा है। सारांश यह कि एक ओर जापान संसार की वर्तमान प्रगति से क़दम से क़दम मिलाये चल रहा है तो दूसरी ओर वह अपनी पुरानी सभ्यता भी अपनाये हुए है। इस प्रकार की विषम अवस्था यदि कहीं संसार में देखने को मिल सकती है तो जापान में मिल सकती है। पर मज़ा तो यह है कि अधिकांश जापानी अपनी इस प्रकार की विषम स्थिति को विषम ही नहीं स्वीकार करते। इसका मूल-कारण यह है कि ये लोग अपने इतिहास के प्रारम्भ से ही दूसरों की अच्छी बातों को अपनाते रहे हैं, साथ ही अपनी बातों को नहीं छोड़ा है।

जापान की सारी उन्नति पिछले ५० वर्षों के भीतर ही हुई है, और सो भी उसके सम्राट् मीजी के शासन-काल में।

इस सम्राट् की मृत्यु सन् १९१२ में हुई थी। इसने ४५ वर्ष शासन किया। इसी के समय में जापान के साम्राज्य की भी वृद्धि हुई। चीन के युद्ध में उसे फ़ोरमोसा का द्वीप मिला। उसके बाद रूस के युद्ध में उसे रूस से सखालियन और ल्यूटुङ्ग मिले। इस युद्ध के परिणाम-स्वरूप कोरिया का राज्य उसके हाथ लगा। पिछले योरपीय महायुद्ध में प्रशान्त महा-सागर के जर्मन-द्वीप उसके अधिकार में आये। इन भू-भागों की प्राप्ति के सिवा चीन-साम्राज्य के मंचूरिया और मंगोलिया में उसका बड़ा प्रभाव हो गया है। इस प्रकार वह एशिया के पूर्वी भाग में ग्रेटब्रिटेन के समान एक बड़ा बलवान् राज्य बन गया है और वहाँ उसके विरुद्ध किसी तरह की कार्रवाई करने का साहस संसार के बड़े से बड़े राष्ट्र को नहीं होता। वास्तव में जापान ने ऐसा ही गौरव प्राप्त किया है।

दूसरा अध्याय

ऐतिहासिक

जापानी पौराणिक गाथाओं से प्रकट होता है कि संसार में सबसे पहले सृष्टि-कर्ताओं ने जापान की रचना की। जब जापान की रचना हो गई तब उनकी पुत्री सूर्यदेवी ने अपने पौत्र को स्वर्ग से उस पर शासन करने को भेजा। वह देवी-पुत्र क्यूशू के दक्षिण में बहुसंख्यक देवताओं के साथ उतरा और वहाँ के तकाचिहो नामक पहाड़ पर रहने लगा। उसकी चौथी पीढ़ी में जिम्मू का जन्म हुआ। जिम्मू ही जापान का पहला सम्राट् हुआ। यह मनुष्य हुआ।

जिम्मू ने अपने दैवी पूर्वजों का काम जारी रक्खा। उसने दस्युओं से युद्ध करके उनका दमन किया और यमातो-प्रान्त तक अपने राज्य का विस्तार कर ईसा के ६६० वर्ष पहले सिंहासन पर बैठा।

जापान और जापानियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में वहाँ की पौराणिक गाथाओं का यही सार है। इस कथा का सभी आस्तिक जापानी विश्वास करते हैं। परन्तु इसका ऐतिहासिक तथ्य केवल इतना ही है कि जिम्मू के पूर्वज अपने दल-बल के साथ बाहर से आकर जापान में आबाद हुए। ये लोग सूर्यवंशी थे। इनमें जिम्मू ने वहाँ के मूलनिवासियों को पराजित कर

जापान में अपना राज्य स्थापित किया। रूप-रेखा से ये लोग मंगोल जान पड़ते हैं। इनका क़द नाटा, शरीर गठीला, चौड़ा और पुष्ट होता है। इनकी नाक चपटी होती है और शरीर का रंग पीला होता है। अतएव ये चीन से आये होंगे। आधुनिक विद्वानों का यही मत है।

जापान का वर्तमान राजघराना जिम्मू के समय से अब तक अविच्छिन्न रूप से अधिकारारूढ़ है। इस राजघराने में अनेक राजाओं और रानियों ने बड़े गौरव के साथ शासन किया है और अपने राज्य की मर्यादा बढ़ाई है। सन् २०२ ईसवी में जापान की विधवा सम्राज्ञी जिंगो ने कोरिया पर चढ़ाई की थी और उसे युद्ध में हरा दिया था। फल-स्वरूप कोरिया जापान को कर देने लगा था। इसी समय से इन दोनों देशों में सम्बन्ध स्थापित हो गया और इससे जापान का बड़ा हित हुआ, क्योंकि कोरिया जापान से अधिक सभ्य था।

सन् ५५२ ईसवी में चीन और कोरिया से बौद्ध-प्रचारक जापान पहुँचे। वहाँ उन्होंने बौद्ध-धर्म और चीनी सभ्यता का प्रचार किया। सम्राट् से लेकर साधारण प्रजाजन तक ने बौद्ध-धर्म स्वीकार कर लिया और चीनी सभ्यता का अनुकरण कर अपना सामाजिक और राजनैतिक सुधार किया। इसी समय वहाँ पहले-पहल लिखने-पढ़ने का भी प्रचार हुआ।

सातवीं सदी के पिछले भाग में चीन के अनुकरण पर जापान में शासन-व्यवस्था का सुधार हुआ। अब तक एक-

मात्र सम्राट् ही शासन तथा सेना-सम्बन्धी सारा कार्य करता था, परन्तु चीनी सभ्यता का अनुकरण करने पर राज्य-प्रबन्ध फुजीवरा-घराने के हाथ में चला गया और सम्राट् अपना समय धर्मकार्यों और साहित्यालोचना में बिताने लगे। फुजीवरा-घराने की राजवंश से बड़ी घनिष्ठता थी। इस घराने का प्रथम पूर्वज पूर्वोक्त सूर्यदेवी के पौत्र का अनुचर था। इस घराने ने पाँच सदी तक जापान पर शासन किया। इसके समय में जापान में साहित्य, सङ्गीत और कला की बड़ी उन्नति हुई, बौद्ध-धर्म का महत्त्व बढ़ा, राज-दरबार में शान-शौकत आई और देश में शान्ति-सुख क़ायम हुआ। जापानी लोग इस काल को स्वर्ण-युग के नाम से आज भी याद करते हैं।

अन्त में १२वीं सदी में दो अन्य घरानों का उदय हुआ। ये दोनों घराने भी राजवंशी थे। इनमें एक का नाम तैरा और दूसरे का मिनामोटो था। इन दोनों घरानों ने मिलकर फुजीवरा-घराने को युद्ध में ध्वंस कर दिया। इसके बाद ये दोनों आपस में लड़ने लगे। मिनामोटो घराने की जीत हुई। अतएव सम्राट् ने इस घराने के नेता को अपना प्रधान अधिकारी नियुक्त किया। इसकी पदवी शोगन हुई। इसने कामाकुरा में राजधानी क़ायम की। इसी समय से जापान में भू-स्वामियों का युग आरम्भ हुआ। अब सम्राट् की क्षमता नाम-मात्र को ही रह गई।

कोई सात सदियों तक भिन्न-भिन्न घरानों के वीर नेताओं के हाथों में जापान का शासन-सूत्र रहा। जिस घराने का बल

बढ़ता था उसी का नेता अपनी तलवार के जोर से राज्याधिकार अपने हाथ में कर लेता था। अन्त में १७ वीं सदी का आरम्भ होते ही शोगन का पद तोकूगावा घराने में आया और जापान पर इस घराने ने सन् १८६८ तक शासन किया। इसके बाद शासन-प्रबन्ध में परिवर्तन हुआ और जापान में पाश्चात्य ढङ्ग की शासन-व्यवस्था प्रचलित करने की घोषणा हुई।

शोगन-काल में सन् १२८१ में प्रसिद्ध मंगोल दिग्विजयी कुबलईख़ाँ ने जापान पर चढ़ाई की थी, परन्तु अन्त में उसे ख़ाली हाथ लौट जाना पड़ा था। इसी काल में सन् १५४२ में पहले-पहल योरपीय लोग जापान पहुँचे थे और उन्हें व्यापार और धर्मप्रचार करने की आज्ञा मिली थी। इसके सिवा सोलहवीं सदी के अन्त में जापान ने समग्र चीन-साम्राज्य विजय करने के विचार से कोरिया पर चढ़ाई की थी। इस चढ़ाई में जापान की जीत हुई और कोरिया की बड़ी हानि हुई। तोकूगावा घराने के उदयकाल में योरपीयों का आना-जाना सरकारी आज्ञा से बन्द कर दिया गया और जो बहुसंख्यक जापानी ईसाई हो गये थे वे बुरी तरह से क़त्ल कर डाले गये। केवल डचों को व्यापार करने को कुछ अधिकार बड़ी मुश्किल से मिले थे। इसके बाद कोई सवा दो सौ वर्ष तक जापान में योरपीय नहीं आने पाये।

अन्त में अमरीका के युनाइटेड स्टेट्स का कोमोडोर पेरी सन् १८५४ में अपना जङ्गी बेड़ा लेकर जापान पहुँचा। तत्कालीन

शोगन ने भयभीत होकर पाश्चात्यों को जापान में व्यापार करने की आज्ञा दे दी। अमरीका की देखादेखी अँगरेज़ों ने सत्सूमा के राजा और सम्मिलित योरपीय भिन्न राज्यों ने चोश्यू के राजा के बन्दरगाहों पर गोलाबारी करके व्योपार करने का अधिकार प्राप्त किया। योरपीयों के प्रवेश से जापान में गृह-युद्ध शुरू हो गया, क्योंकि सम्राट् और उनके पक्ष के भू-स्वामी योरपीयों को नहीं आने देना चाहते थे। सम्राट् के पक्ष के भू-स्वामियों और अन्तिम शोगन से युद्ध हुआ। अन्त में शोगन ने स्वेच्छा से युद्ध बन्द कर दिया, अपने अधिकार सम्राट् को दे दिये और जापान में नये युग का प्रवर्तन हुआ।

सन् १८६८ में सम्राट् मीजी सिंहासन पर बैठा। इस समय वह १८ वर्ष का था। उसके नेतृत्व में देशभक्त राजकर्मचारियों ने जापान को समुन्नति का बीड़ा उठाया। जो जापान उस समय धन-बलहीन था वह अपने देशभक्त और राजनीति-निपुण राजकर्मचारियों के प्रयत्नों से केवल धन-बल-युक्त ही नहीं हो गया, किन्तु उसने सन् १८९५ में अर्थात् कोई ३० वर्ष बाद चीन को युद्ध में हराकर अपनी गणना सभ्य राष्ट्रों में करा ली और १९०५ में रूस को पराजित कर अपने को महान् शक्तियों में गिनवा लिया। इसके बाद व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में उसकी जो उन्नति हुई उसी की बदौलत आज वह संसार का एक सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र हो गया है।

तीसरा अध्याय

भौगोलिक

जापान का जापान नाम प्रसिद्ध यात्री मार्को पोलो ने दिया है। उसने चीनियों से इसका नाम जिह्पेन (सूर्योदय का देश) सुना था, जो बिगड़कर धीरे धीरे जापान हो गया। विदेशों में यह अपने इसी नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु जापानी अपने देश को निपन कहते हैं। वे उसे जापान नहीं कहते। उसका निपन नाम वहाँ तेरह-चौदह सौ वर्ष से प्रचलित है। इसके पहले वह यमातो कहलाता था, जो अब उसके एक प्रान्त का ही नाम रह गया है। अँगरेज़ लोग जैसे ब्रिटेन के आगे ग्रेट लगाकर उसे ग्रेटब्रिटेन कहते हैं उसी तरह जापानी भी निपन के आगे 'दै' (बड़ा) लगाकर 'दै निपन' कहते हैं। किसी समय भारतीयों ने भी अपने भारत के पहले 'महा' लगाकर उसे 'महाभारत' कहा था।

जापान एक द्वीपपुञ्ज है। यह चीन के कोरिया प्रायद्वीप के समीप स्थित है। इसमें ४ बड़े-बड़े टापू हैं। शेष छोटे बड़े टापू चार हज़ार से अधिक होंगे। इनमें अनेक जन-शून्य भी हैं। चार बड़े टापुओं में सबसे बड़े का नाम होनशू है। यही मुख्य जापान है। यह ५० मील से २०० मील तक चौड़ा है। इसी

के पास दूसरा बड़ा टापू शिकोकू है। ये दोनों टापू कोरिया प्रायद्वीप के समीप स्थित हैं। होनशू के दक्षिण और चीन से ५०० मील के अन्तर पर क्यूश्यू नाम का तीसरा बड़ा टापू है। होक कैदो नाम का चौथा टापू उत्तर में है और वह सैवेरिया के समीप है। इस टापू में वहाँ के मूलनिवासी ऐनू लोग ही अधिकतर बसते हैं। इनकी संख्या १३,००० होगी। इन तथा अन्य छोटे-बड़े सारे टापुओं का कुल क्षेत्रफल १,५०,००० वर्ग मील है। परन्तु फ़ारमोसा, कोरिया, सखा-लियन, मंचूरिया का कुछ भाग और प्रशांत महासागर के जर्मन टापुओं के इधर इसमें शामिल हो जाने से अब जापान-साम्राज्य का क्षेत्र-फल अधिक बढ़ गया है।

जापान पहाड़ी देश है। पहाड़ों के पास कहीं-कहीं कुछ मैदान भी हैं। जापान की आबादी सघन है। यहाँ की जन-संख्या पाँच करोड़ के ऊपर है। यहाँ १२ हज़ार छोटे-बड़े नगर हैं। इनमें ३० हज़ार से अधिक की आबादी के साठ नगर हैं। गाँवों की संख्या ६० हज़ार के लगभग होगी।

यहाँ का सबसे ऊँचा पहाड़ फुजीयामा है। यह अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए बहुत प्रसिद्ध है। लम्बी नदियाँ इशीकारी, ताने और शिनानो हैं। सबसे बड़ी झील बावा है, जिसकी परिधि १८० मील है। शिकोकू और मुख्य द्वीप के बीच में जो समुद्री अंश है उसका क्षेत्रफल १,३२५ वर्ग मील है। इस समुद्री अंश में बहु-संख्यक द्वीप हैं। यह अञ्चल बहुत ही सुन्दर है।

जापान में वर्षा ख़ूब होती है। साल में ६२ इंच पानी बरसता है। दो बार पानी बरसता है। एक बार आधे जून से जुलाई के प्रारम्भ तक, दूसरी बार सितम्बर के प्रारम्भ से आक्टोबर के प्रारम्भ तक।

जापान पर प्रकृति की बड़ी विचित्र कृपा है। वहाँ के पहाड़ यदि अपने उच्च शिखरों से ज्वाला की वर्षा करते हैं तो मैदान भूकम्पों से काँपते रहते हैं। ये भूकम्प क्षण भर में लाखों निवासियों को गृह-हीन बना देते हैं एवं हज़ारों के प्राण तक ले लेते हैं। ये आते भी बहुत हैं। साल भर में प्रतिदिन ४ के हिसाब से आते हैं। इसी प्रकार समुद्री तूफ़ानों से भी समय-समय पर असीम हानि होती रहती है। तूफ़ानों से पहाड़ों के कगार फिसल पड़ते हैं एवं नदियों में बाढ़ आ जाती है, जिससे वहाँ की खेती-बारी विनष्ट हो जाती है। ये तूफ़ान जून और आक्टोबर में प्रायः आते हैं। परन्तु प्राकृतिक सौन्दर्य के आगे ये सारी कठिनाइयाँ अधिक कारगर नहीं होतीं। जापानी इन सब कठिनाइयों को सदियों से सहते चले आ रहे हैं, और वे अपने देश के सौन्दर्य के आगे इनकी कुछ परवा नहीं करते। यही नहीं, इन बातों से उनका स्वभाव भी साहसी, वीर, सहिष्णु और सन्तोषी हो गया है।

जापान की राजधानी टोकियो है। इसकी जन-संख्या २२ लाख से कुछ कम है। यहाँ पाश्चात्य ढङ्ग की बड़ी-बड़ी संस्थायें क़ायम हैं। इसके बाद दूसरा बड़ा नगर ओसका है। इसकी

जन-संख्या साढ़े बारह लाख से कुछ ऊपर है। इसे जापान का बम्बई समझना चाहिए। यह वहाँ का प्रधान व्यावसायिक नगर है। यहाँ सैकड़ों बड़े बड़े और भाँति-भाँति के कारख़ाने हैं। इसके सिवा यहाँ एक सबसे अधिक पुराना दुर्ग भी है। यह नगर अपने पुलों और त्योहारों के लिए प्रसिद्ध है। नगोया की जन-संख्या सवा चार लाख से कुछ ऊपर है। यह नगर अपने पुराने और बड़े भारी महल के लिए प्रसिद्ध है। निक्को नगर जापान के भूतकालीन गौरव का पता देता है। तोकूगावा-घराने के रईसों के यहाँ बड़े-बड़े समाधि-मन्दिर हैं। जापान के रईसों में इस घराने की बड़ी उन्नति हुई थी। इनके समाधि-मन्दिरों पर सोने का काम है। कहा जाता है कि सोने के कोई सवा बाईस लाख पत्र मन्दिरों में लगे हैं। कामाकुरा में शोगन-काल की इमारतों के दृश्य दिखाई देते हैं। पिछले दिनों तक इसी घराने के लोगों की जापान में प्रभुता थी। यहाँ बुद्ध भगवान् की एक बड़ी विशाल मूर्त्ति है जो पचास .फुट ऊँची है। यह मूर्त्ति काँसे की है। जापान की पुरानी राजधानी किओटो की जन-संख्या ६ लाख के लगभग है। यहाँ अनेक पुराने राजमहल, मन्दिर और सुन्दर स्थान हैं। मियाजिमा अपने 'तोरी' नामक शिन्तो-मन्दिर के लिए प्रसिद्ध है। यह मन्दिर समुद्र में स्थित है। इसका तोरण ७० .फुट लम्बा है। यहाँ का दृश्य बड़ा सुन्दर है।

जापान का वार्षिक राजस्व १३,५०,००,००० पौंड है। उसका वैदेशिक व्यापार ४३,००,००,००० पौंड है। उसकी

व्यावसायिक प्रतिद्वन्द्विता से ग्रेटब्रिटेन, युनाइटेड स्टेट्स जैसे व्यवसाय-प्रधान राष्ट्र शंकित रहते हैं। उसने योरपीय महायुद्ध के समय में ग्रेटब्रिटेन को ऋण दिया था। यह युद्ध-भूमि में कुछ ही समय के भीतर १५ लाख योद्धा एकत्र कर सकता है और अब वह इस प्रयत्न में है कि भविष्य में यथासमय चालीस लाख योद्धा एकत्र कर सके, जो पूर्ण रीति से शिक्षित और सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित हों।

चौथा अध्याय

जापानी लोग

जापानी लोग प्रायः दो भागों में विभक्त हैं। एक भाग सैनिकों का घराना है और दूसरा साधारण लोगों का। सैनिकों के घरानों में वहाँ के राजा-रईसों तथा उनके योद्धाओं के घराने शामिल हैं। नया शासन-विधान जारी होने पर सम्राट् ने इन सबको इनकी पद-मर्यादा के अनुसार भिन्न-भिन्न नये-नये दर्जों में विभक्त कर इनकी पेंशनें नियत कर दी हैं। पहले देश का शासन इन्हीं लोगों के हाथ में था और ये लोग या तो छोटे-बड़े भू-स्वामी थे या उनके अनुयायी योद्धा थे। परन्तु गृह-युद्ध के बाद इन सबने अपने सारे अधिकार तथा भू-सम्पत्ति सम्राट् को अर्पित कर दी, जिसके बाद इनका नया सङ्गठन किया गया और अब इनके अधिकार सीमाबद्ध हो गये हैं। तथापि समाज में इनकी पद-मर्यादा बनी हुई है और ये भी अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए अपने परम्परागत आचार-व्यवहार का पालन करने में अपना गौरव समझते हैं। साधारण लोगों में कृषकों, कारीगरों और दूकानदारों की गिनती की जाती है।

नई व्यवस्था के अनुसार ये दोनों श्रेणियाँ इस समय पाँच भागों में विभक्त हैं—१ सम्राट्, २ राजवंश, ३ रईस लोग

(इनमें पहले के नामी-नामा भू-स्वामियों के घराने शामिल हैं), ४ योद्धा-वर्ग, ५ साधारण लोग।

इन लोगों के सिवा वहाँ कुछ अछूत भी हैं। इस श्रेणी में चमार, क़ब्र खोदनेवाले, भिखमंगे, नाचने-गाने का पेशा करनेवाली स्त्रियाँ, वेश्यायें और भिक्षुक साधुओं का एक ख़ास समूह है।

देश की भौगोलिक स्थिति का जापानियों पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। जापान के पहाड़ी देश और ऊबड़-खाबड़ होने से जापानी लोग छोटे-छोटे समूहों में बँटे हुए हैं। ये सभी समूह अपनी स्वाधीन स्थिति बनाये रखने के बड़े प्रेमी हैं। अतएव भिन्न-भिन्न समूहों के जापानियों की रूप-रेखा, बोली-बानी, रीति-व्यवहार और शील-स्वभाव में अन्तर दिखाई देता है, और वे सभी अपने-अपने व्यक्तित्व का विकास स्वाधीन भाव से करने के ही इच्छुक रहते हैं।

जापान प्राकृतिक शोभा का घर है, अतएव उसके निवासियों का प्रकृति-प्रेमी होना स्वाभाविक है। अपने इसी प्रकृति-प्रेम के कारण उनका जीवन सीधा-सादा हो गया है, वे कृत्रिमता से इसी कारण दूर रहते हैं। प्रकृति से निरन्तर सम्बन्ध होने के कारण उनको सौन्दर्य की विशेष पहचान हो गई है। सदा सुन्दरता का दर्शन करते रहने से उनका यह स्वभाव हो गया है कि जब कोई नई वस्तु वे देखते हैं तब वे उसकी

अच्छी ही बातों को देखते हैं। इसी से ग़रीबी तथा सङ्कट के समय में भी वे प्रसन्न रहते हैं।

जापान के अगणित प्राकृतिक सुन्दर दृश्यों के प्रभाव से जापानी लोग कला के प्रेमी हो गये हैं। जहाँ कहीं उन्हें कोई असाधारण सुन्दर स्थान या कोई भयकारक प्राकृतिक वस्तु दिखाई दी, वहीं उस स्थान या उस वस्तु के अधिष्ठातृ देवता के नाम पर उपयुक्त मन्दिर बनकर खड़ा हो गया। इसी से वहाँ प्रत्येक पर्वत का अपना-अपना देवता है, जिसके भय या उपकार के कारण लोग यथासमय उसकी पूजा करते रहते हैं। जापान की प्राकृतिक छटायें भी भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं, कोई भयङ्करता का प्रतिरूप है, कोई सर्वसंहारक है तो कोई स्वर्ग के समान सुन्दर है। यदि कहीं ज्वालामुखी धधकता है तो कहीं समुद्री तूफ़ानों से देश के तटवर्ती भू-भाग विपन्न हो रहे हैं, या कहीं मैदान भूकम्प से डाँवाडोल हो रहे हैं जिससे क्षण भर में लाखों इमारतें नष्ट होती जाती हैं; परन्तु जापान का प्राकृतिक सौन्दर्य भी ऐसा अनूठा है कि उसकी मनोमोहकता के आगे प्रकृति के इन संहारक रूपों के प्रभाव की प्रबलता वहाँ नहीं-सी मालूम पड़ती है। सैकड़ों प्रकार के फूलों, पौधों और वृक्षों की शोभा, पर्वतों की छटा, वायुमण्डल की स्वच्छता और ऋतुओं की बहुलता ऐसी बातें हैं जो वहाँ की प्राकृतिक शक्तियों में सामञ्जस्य उत्पन्न कर जापानियों को धैर्य प्रदान करती हैं और उनको सदा प्रसन्न बनाये रहती हैं।

देश की उपर्युक्त स्थिति ने जापानियों के स्वभाव और शरीर को अपने अनुकूल बना लिया है। नित्य के भूकम्प, तूफ़ान आदि के कारण ही जापानी लोग लकड़ी, फूस या काग़ज़ के बने घरों में रहते हैं, और इन घरों को आग लगकर जल जाने का निरन्तर भय रहता है। अतएव अपने घरों की मरम्मत की आवश्यकता से वे अध्यवसायी, सहिष्णु और भाग्यवादी हो गये हैं। इसके सिवा देश का बहुत ही थोड़ा भू-भाग उपजाऊ है और देश के पहाड़ी होने के कारण जीवन-यापन में बड़ी कठिनाई झेलनी पड़ती है। फलतः जापानी लोग मितव्ययी, सहनशील और स्वावलम्बी हो गये हैं, जिससे वे स्वाधीन, अभिमानी, सङ्कीर्णहृदय और आत्मतुष्ट बन गये हैं।

पाँचवाँ अध्याय

सभ्यता

जापानी सभ्यता चीनी और भारतीय सभ्यता के मिश्रण से बनी है। चीनी और भारतीय सभ्यताओं की अच्छी से अच्छी बातों को जापानियों ने अपना बना लिया है। और पहले-पहल वहाँ इनका प्रचार चीनी बौद्ध-प्रचारकों ने ईसा की छठी सदी में किया था। इन प्रचारकों के संसर्ग में आकर जापानियों ने चीनी सभ्यता और बौद्ध-धर्म को अपना लिया। सभ्य चीनियों के संसर्ग में आ जाने से जापानी सभ्यता का नूतन संस्कार हुआ। चीनी सभ्यता के प्रभाव से वहाँ के नैतिक विचार अधिक पुष्ट हो गये। जापानियों के अपने 'बुशीदो' धर्म को भी इन नये संस्कारों से अधिक बल मिला।

जापानी वीरों का 'बुशीदो-धर्म' जापान की अपनी वस्तु है। इसका आधार वहाँ का शिन्तो-धर्म और पितृ-पूजा है। इस धर्म के अलिखित सिद्धान्त जापानी जाति की नस-नस में व्याप्त हैं। यह धर्म जापानियों को शिक्षा देता है कि युद्ध-विद्या का अभ्यास करके उसमें पूर्णता प्राप्त करो, कोई नीच या उद्दण्ड कार्य न करो, अपने व्यवहार में कायरता न दिखाओ, मितव्ययी बनो और सीधे-सादे ढङ्ग से रहो, प्रतिज्ञा का पालन

करो, सेवक और स्वामी एक दूसरे की उपयोगिता को स्वीकार करें और मरने-जीने की परवा न करते हुए एकता के साथ जाति पर आये हुए सङ्कट का सामना करें।

जापानी स्वभाव में बुशीदो-धर्म के इन्हीं सिद्धान्तों की प्रधानता है। सारी जाति का चरित्रबल इन्हीं के आधार पर बना है, यद्यपि प्रारम्भ में यह वहाँ की योद्धा-जाति का ही धर्म था। यह धर्म उन सदाचार-सम्बन्धी नियमों की शिक्षा देता है जिनका पालन करना वहाँ की योद्धा-जाति के वीरों का प्रधान धर्म था और जो सदियों के सामरिक जीवन के अनुभव-द्वारा अस्तित्व में आये थे। इस धर्म का मूल-सिद्धान्त यही रहा है कि इसके माननेवाले को अपने स्वामी के लिए अपने प्राण देने होंगे, अपना, अपने परिवार का तथा अपने कुटुम्ब का मोह छोड़कर अपने स्वामी के लिए मरना होगा, साथ ही अपने शत्रु को पीठ नहीं दिखाना होगा।

जब जापान में भू-स्वामियों का ज़ोर बढ़ा और राज्य-प्रबन्ध में उनका प्रभाव पड़ने लगा तब वहाँ एक नई श्रेणी के योद्धाओं का जन्म हुआ। इस श्रेणी के योद्धा समुराई कहलाते थे और ये भू-स्वामियों के साथ रहकर युद्ध करते थे। इनका युद्ध करना ही पेशा हो गया था। कालान्तर में इस श्रेणी के लोगों को विशेष अधिकार प्राप्त हो गये और समाज में इनकी मर्यादा बढ़ गई। ये लोग दो तलवारें बाँधते थे और इनका समाज कुछ ख़ास नियमों का दृढ़ता से

पालन करता था। ये लोग सच्चे और ईमानदार होते थे, जिस काम को ठीक समझते थे उसको कर डालने में हिचकते नहीं थे; जहाँ मर मिटना उचित समझते थे, मरने से मुँह नहीं मोड़ते थे; जहाँ वार करना उचित समझते थे, वार करने से विमुख नहीं होते थे। इन योद्धाओं का जीवन ही बुशीदो-धर्म हो गया और जो समुराई अपने धर्म से च्युत होता था उसे प्रायश्चित्तरूप आत्महत्या करनी पड़ती थी। इनका यह काम 'हराकिरी' कहलाता था और यह कृत्य वहाँ निन्द्य नहीं समझा जाता था।

हराकिरी एक ख़ास ढङ्ग की आत्महत्या है। जब कोई समुराई अपने को अपमानित समझता था, उसको हराकिरी करने का अधिकार होता था। हराकिरी करनेवाले को पेट में कटार भोंक कर अपनी आँतें अपने हाथ से बाहर निकाल-कर रख देनी पड़ती थीं। इस प्रकार भयङ्कर ढङ्ग से अपने प्राण देकर या तो वह अपने को निर्दोष प्रमाणित करता था या अपने अपराध का प्रायश्चित्त करता था। ऐसे ही कठोर नियमों का व्यवस्था बुशीदो-धर्म की रही है और उसके अनुयायी समु-राई योद्धा उनका अक्षर अक्षर पालन करने में ही अपना गौरव समझते रहे हैं।

नई व्यवस्था के प्रचलन से यद्यपि अब समुराइयों की संस्था टूट गई है, तथापि उनकी व्यवस्था और उनके सदाचार का जो प्रभाव जापानियों पर पड़ा है वह आज भी उनमें मौजूद है।

बुशीदो की यह शिक्षा कि अपने स्वामी के सच्चे रहो, आज भी जापानियों में मौजूद है। जापानियों को इसने चरित्र की दृढ़ता प्रदान की है और उन्हें परम देशभक्त बना देने का काम किया है।

बुशीदो की ही भाँति जापानियों पर उनकी पितृ-पूजा का भी बड़ा भारी प्रभाव है। यद्यपि पितृ-पूजा का प्रचार चीन और भारत में भी रहा है और आज भी है एवं जापानियों ने भी इन्हीं दोनों से उसे सीखा है, तथापि उनकी पितृ-पूजा का महत्त्व वहाँ आज भी ज्यों का त्यों बना हुआ है। यहाँ तक कि बौद्ध और ईसाई-धर्म ग्रहण कर लेने पर भी कोई जापानी अपनी सनातन की पितृ-पूजा नहीं छोड़ता है। जिस पाश्चात्य सभ्यता की जापान में इस समय प्रधानता है वह भी इस पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकी। यह पूजा ज्यों की त्यों आज भी जारी है। प्रत्येक जापानी चाहे वह शिन्तो हो, चाहे बौद्ध हो, चाहे ईसाई हो; चाहे कुछ हो, वह पितृ-पूजक अवश्य है। जापानी अपनी एवं अपनी सन्तानों की भविष्य की उन्नति के लिए अपने पूर्वजों का सम्मान करना, उनके गुणों का कीर्तन करना, अपनी भूतकालीन परम्पराओं की बराबर याद करते रहना अपना धर्म समझते हैं।

पितृ-पूजा ने जापानियों को केवल मृतकों का सम्मान करने की ही शिक्षा नहीं दी है, किन्तु उसने उन्हें इस बात की भी शिक्षा दी है कि जीवित लोग भी ऐसा आचरण करें कि

भविष्य में वे भी उच्च कोटि के पितर समझे जायँ। इसके सिवा उसने उन्हें वीर, सहनशील और साहसी बना देने का भी काम किया है। अपने पूर्वजों के नाम पर धब्बा न लगने देने की भावना ने उन्हें उपर्युक्त मनुष्योचित गुणों से अलङ्कृत कर दिया है। अपने पूर्वजों और अपने देश के लिए सभी कुछ करने को जापानी सदा तैयार रहते हैं।

सदाचार के सिद्धान्तों की शिक्षा जापान में सदियों से जारी रही है। वहाँ की शिक्षा-प्रणाली में इस विषय को सदा प्रधान स्थान प्राप्त रहा है। पिछली तीन सदियों में इस विषय की शिक्षा का और भी अधिक विकास हुआ है। साहित्य का अध्ययन करनेवालों को तो इस विषय का ज्ञान सुलभ था ही, परन्तु अशिक्षितों को भी इसकी शिक्षा सरल पुस्तकों या व्याख्यानों-द्वारा सदा मिलती रही है। यद्यपि इस विषय की शिक्षा का आधार कानफूसियस के उपदेश ही रहे हैं, तथापि जापानियों ने उन्हें अपने विचारों तथा स्वभाव के अनुकूल बना लिया है। जब पिछले समय में सार्वजनिक शिक्षा की व्यवस्था की गई थी तब उसमें भी सदाचार की शिक्षा को प्रधान स्थान दिया गया था। इस सम्बन्ध में स्वयं सम्राट् मीजी ने अपने आदेश-पत्र निकाले थे और सेना एवं साधारण लोगों के शिक्षा-क्रम में उसकी व्यवस्था करने का आदेश दिया था और इस सदाचार-शिक्षा का मुख्य आधार राजभक्ति और पितृ-भक्ति है। इन्हीं दोनों बातों की शिक्षा उनकी सदाचार की शिक्षा है।

यह सदाचार भी चीन से ही जापान में पहुँचा है। परन्तु जापान में राजभक्ति पर अधिक ज़ोर दिया जाता है, वहाँ राज-भक्ति और देश-भक्ति ये दोनों शब्द समानार्थी माने जाते हैं।

जापानी लोग देश, भूमि, जनता, राष्ट्र और राज्य आदि सबको एक ही वस्तु समझते हैं। उधर सम्राट्, राजघराना और राज्य भी प्रायः नैतिक दृष्टि से समानार्थी समझे जाते हैं। सारांश यह है कि जापानियों की दृष्टि में सम्राट् और राष्ट्र एक ही वस्तु हो गये हैं। अतएव उनकी सच्ची देश-भक्ति के भीतर सम्राट् का भी प्रेम आ जाता है। और उनकी सच्ची राज-भक्ति में देश का भी प्रेम आ जाता है। इस स्थिति का मूल-कारण एक यह भी है कि जापान का राजघराना अतीत काल से अक्षुण्ण चला आ रहा है, साथ ही जापानी जाति भी सदियों से एकता के सूत्र में आबद्ध रही है। इसके सिवा एक यह बात भी है कि जापानी लोग अपने देश के बाहर जाकर विदेश में नहीं आबाद हुए हैं, जापान की ही भूमि में उनके पूर्वजों की हड्डियाँ लीन हुई हैं। साथ ही उस पर विदेशियों का कभी अधिकार भी नहीं हुआ है। यही बातें हैं जिनसे जापानी राव से लेकर रङ्क तक अपने देश की बड़ी भक्ति करते हैं, उसके लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर देने को सदा तैयार रहते हैं।

जापानियों को अपनी जातीय संस्थाओं से बड़ा प्रेम है। वे पाश्चात्य रीति-व्यवहार केवल इसलिए ग्रहण करते हैं कि उन्हें संसार की महाशक्तियों से बराबरी करनी है। इसी कारण

वे पाश्चात्य और देशी ढङ्ग दोनों को आवश्यकतानुसार ग्रहण करते हैं। राजदूत, राजमन्त्री और राजनैतिक जैसे उच्च सरकारी कर्मचारी पाश्चात्य और देशी दोनों ढङ्गों से रहते हैं। बाहर वे पाश्चात्य ढङ्ग से और घर में अपने देशी ढङ्ग से रहते हैं। इनके वैसे ही दो ढङ्ग के मकान भी होते हैं। एक देशी ढङ्ग का और दूसरा योरपीय ढङ्ग का। इस प्रकार रहनेवाले जापानी अपनी स्त्रियों को भी पाश्चात्य ढङ्ग से रखते हैं और बाहर उनके साथ उसी प्रकार का व्यवहार भी करते हैं, जैसे एक योरपीय अपनी स्त्री के साथ करता है। जहाँ घर में उनकी स्त्री उनके साथ देशी ढङ्ग से व्यवहार करती है, उनकी सेवा-टहल करती है, वहाँ बाहर उनके योरपीय ढङ्ग से रहनेवाले पति उनके साथ पाश्चात्यों जैसा ही व्यवहार करते हैं।

जापान में पूरी धार्मिक स्वन्त्रता है। सभी धर्मों का वहाँ प्रचार हो सकता है। सरकार की ओर से किसी तरह की बाधा नहीं है। सभी धर्म एक समान समझे जाते हैं। यह सच है कि सरकार शिंतो-धर्म के सम्बन्ध में प्रोत्साहन देती है, उस धर्म के मन्दिरों और पुरोहितों का प्रबन्ध करती है, परन्तु इसका कारण धार्मिक पक्षपात नहीं है, किन्तु यह कि इस धर्म से राज्य के अस्तित्व में सहायता मिलती है। वास्तव में बात यह है कि जापानी किसी एक धर्म के अनुयायी नहीं हैं। वे मिश्रित-धर्म के अनुयायी हैं। शिंतो-धर्मानुयायी होते हुए भी वे बौद्ध-धर्म और कानफूसियस के सिद्धान्तों को भी उतने ही

आदरभाव से मानते हैं। सारांश यह कि वे प्रत्येक धर्म से कुछ न कुछ ले लेते हैं, जिससे उन्हें सन्मार्ग पर चलने में सहायता मिलती है, और यह काम वे अपनी स्वाभाविक सहिष्णुता से करते हैं। इसी से एक जापानी शिंतो कानफूसियसी और बौद्ध तीनों होता है। शिंतो उसे पितरों, स्वदेश और सम्राट् की भक्ति की शिक्षा देता है, कानफूसियस से उसे सदाचार की शिक्षा मिलती है और बौद्ध-धर्म उसे मुक्ति का मार्ग बतलाता है।

जापानियों को व्यक्तिगत स्वाधीनता प्राप्त है और यह स्वाधीनता उन्हें ज़माने से प्राप्त है। अतएव सरकार उनके स्थानिक मामलों में अधिक हस्तक्षेप नहीं करती और वे उनका निपटारा कर लेने को स्वतन्त्र हैं। नये शासन के प्रचलन से उन्हें और भी सुविधायें हो गई हैं। क़ानून के अनुसार वे जहाँ चाहें आ-जा सकते हैं और जहाँ चाहें बस सकते हैं। क़ानून का उल्लङ्घन करने पर ही सरकार उन पर हाथ डाल सकती है, अन्यथा वह उनके कार्यों में किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं करती है। जापानी अपने घर का राजा होता है, परन्तु इसके साथ ही वह क़ानून का माननेवाला भी होता है। जापानियों को लेखन और भाषण की भी स्वाधीनता प्राप्त है। वे अपनी इच्छा के अनुसार सभा-समाजों का सङ्गठन, उनमें कड़े से कड़े भाषण और अपने समाचारपत्रों में अधिकारियों की कड़ी से कड़ी टीका-टिप्पणी कर सकते हैं।

जापानी बड़े देशभक्त और राजभक्त होते हैं। अपने इन्हीं गुणों की बदौलत उन्होंने अपनी मातृ-भूमि का सिर ऊँचा किया है। वहाँ का प्रत्येक पुरुष, स्त्री या बच्चा अपने देश और सम्राट् के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिए सदा तैयार रहता है। शासन-व्यवस्था में सुधार हो जाने से वहाँ के प्रत्येक व्यक्ति को, यहाँ तक कि एक श्रमजीवी को भी, अपने सहज अधिकारों का ज्ञान हो गया है और वह उनका उपयोग करने के लिए सदा तैयार रहता है।

छठा अध्याय

शील-स्वभाव और गृह-जीवन

जापानी लोग बड़े मिलनसार और मिष्टभाषी होते हैं। उनकी रहन-सहन-प्रणाली ने उन्हें बहुत शिष्ट बना दिया है। शिष्टता में जापानी जगत्-प्रसिद्ध हैं।

जापानी लोग सम्मिलित कुटुम्ब में रहते हैं। उनका कुटुम्ब पारस्परिक प्रेम तथा नियमपूर्वक रहन-सहन का एक बढ़िया नमूना है। छोटा बड़े की आज्ञा में रहता है और बड़ा छोटे को प्रेम से रखता है। इस प्रकार की रहन-सहन से प्रत्येक जापानी को शिष्टता की शिक्षा मिलती है। इससे जापानी लोग बात-चीत और परस्पर के व्यवहार में बड़े शिष्ट और विनम्र होते हैं। वे बचपन से ही इन बातों की शिक्षा पाते हैं, जिससे उनका स्वभाव ही वैसा हो जाता है और वे सभी के साथ शिष्टता से व्यवहार करते हैं। इसी से वहाँ की ऊँची-नीची श्रेणियों के लोगों में परस्पर प्रेम का भाव रहता है, किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं होता। एक दूसरे की सङ्कट के समय सहायता करते हैं। यह भाव देहातियों तक में पाया जाता है। इस प्रकार पारस्परिक प्रेम ने जापानियों को एकता के सूत्र में

बाँधकर उन्हें एक बलवान् राष्ट्र के रूप में परिणत कर दिया है।

जापानी गृह-स्वामी का अपने कुटुम्बियों से बड़ा अनुराग रहता है। वह अपनी सन्तान पर बड़ा प्रेम करता है। जापानी माता-पिता अपनी सन्तान का प्रेम के साथ लालन-पालन करते हैं और उन्हें शारीरिक दण्ड देना बेजा समझते हैं। वहाँ की पुत्र-पुत्रियाँ भी अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन करना अपना एक-मात्र कर्तव्य समझती हैं। दुष्ट सन्तान जैसी वस्तु का ही जापान में अभाव है, क्योंकि आज्ञाकारिता का भाव वहाँ व्यापक रूप से पाया जाता है। यह इसी प्रकार के गार्हस्थ्य जीवन का सुपरिणाम है कि जापानी लोग एक वीर, धैर्यशील तथा देशभक्त जाति बन जाने में समर्थ हुए हैं। सन्तान के चरित्रवान् बनाने में जापानी माता का बहुत अधिक हाथ रहता है। प्रारंभ से ही वह अपनी सन्तान को अपने आचरण के द्वारा आज्ञाकारी, साहसी और त्यागी बनाना शुरू कर देती है। वास्तव में विनम्रता, संयम और निःस्वार्थता में जापानी स्त्री का संसार की किसी जाति की स्त्री सामना नहीं कर सकती और उसमें इन गुणों के होने का मूल-कारण वहाँ की प्राचीन परिपाटी का सम्मान है।

जापानी परिवार एक प्रकार का प्रजातन्त्र है। सभी कुटुम्बी सुख-दुःख समान भाग से भोगते हैं। यदि परिवार का कोई एक व्यक्ति ख़ूब अधिक धन पैदा कर लेने में समर्थ होता

है तो उस सम्पत्ति में परिवार के सभी लोगों का समान अधिकार होता है। यह जीवन-प्रणाली जापान में आज भी बड़ी सफलता के साथ जारी है।

जापानी परिवार में यद्यपि पुत्रों की अपेक्षा कन्याओं का स्थान हीन है, तथापि वह उसकी प्रेम की वस्तु है। जापानी कन्या सरलता, निःस्वार्थता और चतुरता का नमूना होती है। ये सद्गुण उसमें धीरे-धीरे उस शिक्षा की बदौलत होते हैं जो उसे उसकी माता से प्राप्त होती है। शिक्षित जापानी कुमारियाँ काव्य और सङ्गीत से बड़ा अनुराग रखती हैं। वे कविता करती हैं और सङ्गीत में भी प्रवीण होती हैं। उनका विवाह उनके माता-पिता की इच्छा पर निर्भर रहता है। जो वर पिता ढूँढ़ता है और माता जिसका समर्थन करती है उसी के साथ उसका विवाह होता है। परन्तु यदि पति-पत्नी में नहीं बनी तो पति अपनी पत्नी का परित्याग कर देता है और उसे उसके मायके भेज देता है, जो वास्तव में उसके लिए एक कलङ्क की बात होती है। पति की आज्ञा न मानने, उसकी रुचि के अनुसार चावल न पका सकने, उसका अनादर करने तथा अधिक बातूनी होने पर पति अपनी पत्नी का परित्याग कर देता है। इस कारण पत्नी अपने पति से सदा भयभीत रहती है। इसके सिवा पत्नी अपना विशेष रूप से शृंगार भी नहीं कर सकती है। उसका पति यह बात नहीं पसन्द करता कि उसकी पत्नी ख़ूब बन-ठनकर निकले। जापानी पत्नी को पति के सिवा



वसन्त ऋतु में बाग़ की सैर

अपनी सास, जेठानी आदि का भी अनुशासन मानना पड़ता है।

जापानी गृह-जीवन में सबसे अधिक महत्त्व अतिथि-सत्कार को प्राप्त है। जापानी अतिथि-अभ्यागत का बड़े प्रेम से स्वागत करते हैं। अतिथि के आ जाने से उनका हृदय प्रसन्न हो जाता है। जिस प्रकार वे अपने अतिथि का सम्मान करते हैं, उसे देखकर यही कहा जायगा कि उन्हें अतिथि के आ जाने से सुख ही मिलता है, उसकी सेवा-शुश्रूषा करने में वे कष्ट का अनुभव नहीं करते। अतिथि के आने पर वे उसके पदत्राण अपने हाथ से खोलते हैं। गृह-स्वामी उसका, बड़ी विनम्रता से सिर झुकाकर, कई बार अभिवादन करता है। इस अभिवादन-क्रिया में आगन्तुक की पद-मर्यादा के अनुसार कमी-बेशी कर ली जाती है।

पदत्राण खोलने के बाद आगन्तुक को घर के भीतर ले जाकर गद्दे पर बिठाते हैं और उसे चाय पिलाते हैं। यदि भोजन का समय हुआ तो भोजन से सत्कार करते हैं। गृह की कन्यायें भोजन की तश्तरियाँ अपने हाथ से ले आती हैं। यदि गृह-स्वामी सम्पन्न हुआ तो वह अपने अतिथि का मनोरञ्जन प्रसिद्ध गणिकाओं-द्वारा करता है। जिन जापानी परिवारों में पाश्चात्य सभ्यता का अधिक प्रवेश हो गया है उनमें अतिथि के सत्कार में कन्याओं के साथ गृह-स्वामिनी भी भाग लेती है।

जापानी स्त्रियाँ रूप-रेखा में सुन्दर और स्वभाव में सुशील होती हैं। उन्हें अपने बाल सँवारने का बड़ा शौक़ होता है। वे कंघों और लकड़ी, धातु आदि के काँटों का भी उपयोग करती हैं। एक दिन के सँवारे बाल कई दिन तक ज्यों के त्यों बने रहते हैं। इसके लिए वे बहुत सावधान रहती हैं और रात में गर्दन के नीचे लकड़ी का तकिया लगाकर सोती हैं, जिससे बालों का जूड़ा खुल न जाय। जापान में स्त्रियों में पर्दे का चलन नहीं है।

कुमारिकाओं के विवाह का प्रबन्ध माता-पिता को करना पड़ता है। इसके लिए वहाँ एजेंट होते हैं, जो इस सम्बन्ध में उनका काम कर देते हैं। जब कन्या विवाह के योग्य हो जाती है और उसके साथ कोई युवक विवाह करने को इच्छुक होता है तब उसका पिता युवक के माता-पिता से एजेंट के द्वारा विवाह की बातचीत करता है। जब सब कुछ ठीक हो जाता है और वर-वधू के माता-पिता सहमत हो जाते हैं तब पुरोहित लोग कोई उपयुक्त दिन ठीक कर देते हैं। उस दिन इष्ट-मित्र इकट्ठा होते हैं और उन सबकी सभा में वर-वधू एक दूसरे को स्वीकार करते हैं। इसके बाद आये हुए इष्ट-मित्र उन्हें अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार नाना प्रकार की वस्तुएँ भेंट करते हैं। अन्त में दावत होती है। सब लोग चावल की शराब पीते हैं और भोजन करते हैं। बस, विवाह की क्रिया समाप्त हो गई। विवाह में किसी तरह का दहेज दिया-लिया नहीं जाता।

परन्तु अब नगरों में विदेशी शिक्षा-प्राप्त घरानों में दहेज की प्रथा चल निकली है, जिसे लोग अच्छी दृष्टि से नहीं देखते हैं।

जापानी गृहस्थी में स्त्रियों की भारत जैसी ही स्थिति है। पुरुषों की अपेक्षा उनका स्थान हीन गिना जाता है। परन्तु इससे उनकी मान-मर्यादा में त्रुटि नहीं होने पाती। एक प्रसिद्ध जापानी शिक्षक का कहना है कि स्त्रियों को पुरुषों के शासन में ही रहना चाहिए। स्त्रियों के लिए एक जापानी साधु की लिखी हुई एक पुस्तक भी है। इस पुस्तक में स्त्रियों के कर्तव्य बताये गये हैं। जापानी स्त्रियाँ इसे अपना धर्म-ग्रन्थ मानती हैं और इसमें लिखे हुए उपदेशों का पालन करने में अपना गौरव समझती हैं। स्त्रियों के कर्तव्यों के सम्बन्ध में और भी ऐसी ही कतिपय पुस्तकें हैं। इन पुस्तकों में से एक पुस्तक में बताया गया है कि कन्याओं को उन्हीं लोगों से मैत्री करना चाहिए जिनसे मित्रता करने के लिए उनके माता-पिता कहें और विवाह हो जाने पर उनके पति। इस प्रकार स्त्रियों को कठोर नियमों का पालन करना पड़ता है। वे स्वेच्छाचारिणी नहीं हो सकतीं। कन्याओं को अपने माता-पिता के अनुशासन में रहना पड़ता है, विवाह हो जाने पर पति का अनुशासन मानना पड़ता है और विधवा होने पर पुत्र उन पर निगरानी रखता है। इस प्रकार के अनुशासन में रहने से जापानी स्त्रियों में आत्मत्याग की भावना अधिक आ गई है और अपने इस गुण के कारण वे उत्कृष्ट गृहिणी और मातायें होती हैं।

भले घर की जापानी गृहिणी अपना गृह-प्रबन्ध बड़े सुन्दर ढङ्ग से करती है। वह शिक्षित होती है। सङ्गीत तथा चित्रकारी का भी उसे अभ्यास रहता है। वह घर के नौकर-चाकरों से काम लेने में भी निपुण होती है। वह रात-दिन अपनी सन्तान की देख-भाल में लगी रहती है। उसे व्यवहार-कुशल होने की शिक्षा देती है। वह बाहर घूमने-फिरने बहुत कम जाती है और यदि जाती है तो अपने सम्बन्धियों के साथ और वहाँ उन्हीं के साथ ही रहती भी है।

जापानी लोग राजसी प्रकृति के होते हैं। इसी से उनके कुटुम्ब में बड़ा लड़का ही सारी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी समझा जाता है, और यदि उसके भाई अपनी कमाई के कारण अलग होकर रहना चाहें तो उनका यह काम अनुचित समझा जायगा। छोटे भाइयों को अपने बड़े भाई के साथ ही रहना होगा और पिता की भाँति उसकी भी आज्ञा पालन करनी पड़ेगी। इसके साथ ही उसे भी अपने छोटे भाइयों तथा अन्य कुटुम्बी जनों का भरण-पोषण करना पड़ता है। यह कुटुम्ब-प्रणाली जापान में १,३०० वर्ष से बराबर आज तक चली आ रही है।

परन्तु पाश्चात्य सभ्यता के संसर्ग से इस प्राचीन प्रणाली में उन घरानों में परिवर्तन हो चला है जिनमें उक्त सभ्यता का अधिक प्रभाव पड़ा है। उन घरानों के नवयुवक ऐसी कुटुम्ब-प्रणाली के कठोर अनुशासन से विद्रोह करने लगे हैं और अपने माता-पिता का विशेष ख़याल नहीं करते। इसी प्रकार लड़कियां

के विवाह में दहेज तथा अपने छोटे लड़कों को सम्पत्ति में अलग अधिकार देने की प्रवृत्ति भी होने लगी है। इसके सिवा जापानी कन्यायें भी अब १७ वर्ष की उम्र में ही विवाह कर लेने में आनाकानी करने लगी हैं। ये नये ढङ्ग वहाँ के समाज में जारी होने लगे हैं, परन्तु लोग इन्हें अच्छा नहीं समझते हैं।

उपर्युक्त ढङ्ग के घरानों में यद्यपि स्त्रियाँ अँगरेज़ी ढङ्ग की पोशाक में दावतों में आ-जा सकती हैं और विदेशियों से मिल-जुल सकती हैं, तथापि ये योरपीय स्त्रियों की भाँति इधर-उधर अकेली घूम-फिरकर हवा नहीं खा सकती हैं और न किसी से अकेली जाकर भेंट-मुलाकात ही कर सकती हैं, यहाँ तक कि वे अपने धर्म-मन्दिरों में भी अकेली नहीं जा सकती हैं।

जापानी स्त्रियाँ बड़ी पति-भक्त होती हैं। अपने पति की आज्ञा में रहना वे अपना धर्म समझती हैं। इसी से जापानी स्त्री अपने पति की बड़ी सेवा करती है। अपनी इस मनोवृत्ति के कारण उसका शील-स्वभाव सरल और साधु होता है। परन्तु जापानी स्त्री का घर की सम्पत्ति पर कुछ भी स्वत्व नहीं होता। दहेज में न तो वह अपने साथ कुछ लाती है और न वह घर छोड़ने पर अपने साथ कुछ ले जाने पाती है।

हाँ, जिस स्त्री के माता-पिता पुत्र-हीन होते हैं उनकी सम्पत्ति वह पा सकती है। उस दशा में पति को अपनी स्त्री का नाम ग्रहण करना पड़ता है। पत्नी-त्याग और पुनर्विवाह, दोनों प्रथायें जापान में प्रचलित हैं। पति अपनी पत्नी को

असन्तुष्ट होने पर छोड़ देता है। परित्यक्ता पत्नी अपना दूसरा विवाह कर सकती है। निम्न श्रेणी की स्त्रियाँ भी अपने पति को उसी तरह छोड़ सकती हैं, जिस तरह पति को उनको छोड़ देने का अधिकार है। ऊँची श्रेणी के लोगों में पत्नी-त्याग की घटनायें अधिक होती हैं। परन्तु इस श्रेणी की जिस स्त्री को उसके पिता की सम्पत्ति मिलती है उसके पति को उसकी आज्ञा में रहना पड़ता है। पत्नी उसे इच्छानुसार जब चाहे छोड़कर दूसरा विवाह कर सकती है।

जापानी स्त्री सोने-चाँदी के आभूषण नहीं पहनती है। वह कर्कशा भी नहीं होती। गाली बकना या शपथ लेना तो वह जानती ही नहीं। जापानी स्त्री तम्बाकू पीती है। वह अपनी तम्बाकू की थैली और पीने का पाइप अपने पास रखती है। उसकी ये दोनों चीज़ें बड़ी सुन्दर होती हैं। ये अच्छी चीज़ की बनी होती हैं, साथ ही इन पर बढ़िया कारीगरी भी रहती है।

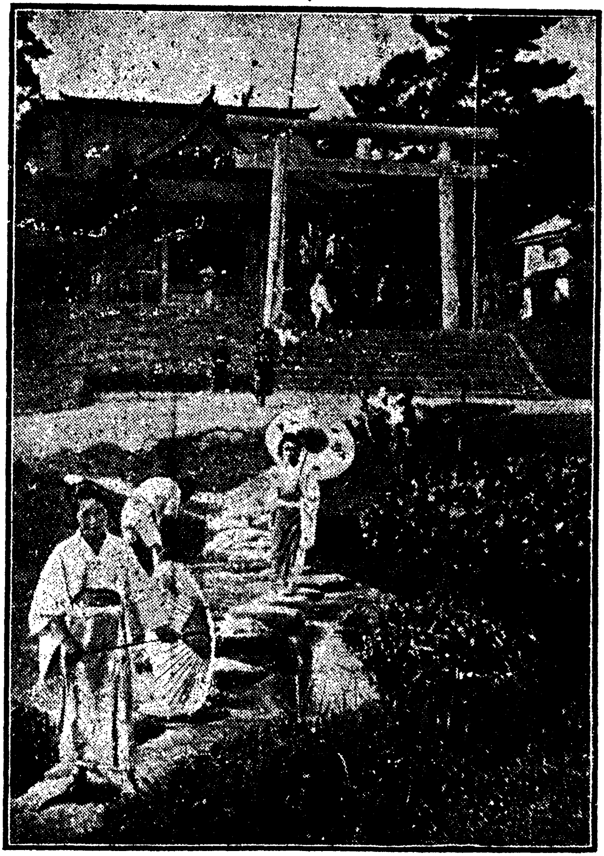
जापानी बालक को अपने माता-पिता के आज्ञानुसार विवाह करना पड़ता है। यदि कोई युवक इस सम्बन्ध में मनमानी करता है और किसी कन्या को भगा ले जाता है और उसके साथ विवाह कर लेता है तो वह कुटुम्ब के पूजा-पाठ में भाग नहीं लेने पाता।

जापान में ऊँची श्रेणी के लोगों में स्त्रियों का वैसा प्रभाव नहीं है जैसा कि उन्हें कृषक-समुदाय में प्राप्त है। इसका मूल-कारण यह है कि किसान स्त्रियाँ खेती-बारी आदि के कामों में मर्दों

से पीछे नहीं रहती हैं? क्या धान लगाने और उनके काटने में, क्या चाय को पत्तियाँ तोड़कर उन्हें तैयार करने में और क्या रेशम के कीड़ों का निगरानी और रेशम तैयार करने में वे सर्वत्र मुस्तैदी से काम करती हुई दिखाई देती हैं। यही नहीं, समय-समय पर मर्द भी उनकी सलाह के अनुसार काम करते हैं। इस प्रकार किसान स्त्रियों ने अपनी कर्तव्यशीलता से अपने पुरुष-समुदाय को अपनी मुट्ठी में कर लिया है, और कहीं-कहीं तो वही घर की मालिक बन बैठती हैं और रुपया-पैसा भी अपने हाथ में रखती हैं। ऐसे वहाँ अनेक गाँव पाये जाते हैं जो 'कनका डेनका' कहलाते हैं। 'कनका डेनका' का अर्थ है 'स्त्री का सिंहासन'। अर्थात् कनका डेनका कहे जानेवाले गाँवों में पुरुष की अपेक्षा गृह-प्रबन्ध में स्त्रियों को अधिक अधिकार प्राप्त हैं। और यह बात वहाँ है जहाँ को सारी विधि-व्यवस्था में भारत की ही भाँति पुरुष के ही सुख का अधिक ख़याल रक्खा गया है।

जापान में स्त्री-पुरुषों की संख्या प्रायः समान है। अतएव स्त्रियों के लिए वहाँ विवाह की समस्या कठिन नहीं है। जापानी स्त्रियाँ अधिकतर सुदक्ष गृहिणी बनना अधिक पसन्द करती हैं। परन्तु अब नई सभ्यता के प्रचार से बहुसंख्यक स्त्रियाँ पुतलीघरों में, रेशम और काग़ज़ के कारख़ानों में नौकरी करती हैं। हाँ, सार्वजनिक संस्थाओं में अभी उनका अधिक संख्या में प्रवेश नहीं हुआ है। उनकी एक बड़ी

संख्या स्कूलों में अध्यापक का काम करने में अवश्य नियुक्त है। परन्तु जो स्त्रियाँ उतनी अधिक शिक्षित नहीं हैं उन्हें डाकघरों, टेलीफोन के दफ़्तरों तथा रेलवे विभाग के किसी-किसी विभाग में नौकरी मिल जाती है। भिन्न-भिन्न प्रकार की खानगी कंपनियों में भी उन्हें क्लर्क की नौकरी मिलने लगी है। इस प्रकार जापान की स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान सार्व-जनिक क्षेत्र में कार्य करती दिखाई देने लगी हैं। और यह जापान की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का ही सुपरिणाम है।



एक जापानी मन्दिर

सातवाँ अध्याय

धर्म

धर्म के मामले में जापानियों का भाव बड़ा विचित्र है। वे सभी धर्मों में सत्यता की पुट पाते हैं। इसी से उनका किसी धर्म से किसी प्रकार का विरोध नहीं है। तथापि उनका राष्ट्रीय धर्म प्राचीन शिन्तो-धर्म ही है। यह उन्हें उनके बहु-संख्यक देवी-देवताओं का परिचय प्रदान करता है और देशभक्त बनाता है। इसके सिवा वे बौद्ध-धर्म को भी मानते और चीन के महात्मा कान्फूकस के सिद्धान्तों का भी पालन करते हैं। इस प्रकार जापानी खिचड़ी धर्म के अनुयायी हैं। वे शिन्तो, कान्फूकस और बौद्ध-धर्म तीनों को मानते हैं। शिन्तो उन्हें इष्ट का निर्देश करता है, कान्फूकस सदाचार की शिक्षा देता है और बौद्ध-धर्म निर्वाण का स्वरूप बतलाता है।

शिन्तो-मन्दिर जापानियों के घर जैसे ही होते हैं। ये सादे होते हैं और लकड़ी के बने होते हैं। इनकी छत फूस से छाई होती है। इनमें जाने के लिए सीढ़ियों से होकर जाना होता है। ये एक गज़ ऊँची कुर्सी पर बने होते हैं। इनका भीतरी अंश बाहर से भी अधिक सादा होता है। इन मन्दिरों की

दोहरी इमारतें होती हैं, जो एक मार्ग-द्वारा जुड़ी होती हैं। प्रवेश-द्वार पर एक घंटा होता है और मन्दिर के भीतर केवल एक दण्ड लटकता रहता है। इस पर कुछ रंगीन काग़ज़ या कपड़े के टुकड़े या कभी-कभी शीशा बँधा रहता है। परन्तु यह शीशा उस पवित्र शीशे से भिन्न होता है जो शिन्तो-धर्म की तीन बड़ी पवित्र वस्तुओं में एक होता है और उनके साथ कपड़ों से लपेटा हुआ बहु-संख्यक सन्दूक़ों के भीतर मन्दिर के पीछे के भाग में रक्खा रहता है और कठिनाई से स्वयं पुरोहितों को भी देखने को मिलता है।

दर्शक जब मन्दिर में जाना चाहता है तब वह पहले हाथ धो लेता है। इसके बाद घंटा बजाता है। तब भीतर जाकर वह प्रार्थना करता है और कुछ पैसे मन्दिर में चढ़ाकर लौट पड़ता है। निकलते समय वह फिर घंटा बजाता है। हिन्दुओं की मन्दिर-पूजा से यह सब बहुत कुछ मिलता-जुलता होता है। मुख्य मन्दिर के सिवा वहाँ अन्य देवताओं आदि के भी मन्दिर होते हैं।

शिन्तो-मन्दिर तथा बौद्ध-मन्दिर भी वृक्षों के कुञ्जों से घिरे होते हैं। इस वृक्षावली में जो वृक्ष पुराने हो जाने पर बढ़ जाते हैं उनके तनों पर घास का रस्सा लपेट दिया जाता है और वे पवित्र मान लिये जाते हैं।

जापान में शिन्तो-धर्म का सबसे अधिक प्राचीन मन्दिर 'इसे' नामक स्थान में है। यह देवी का मन्दिर है। जापान के राजघराने की जिस सूर्यदेवी से उत्पत्ति है उसी का यह मन्दिर है। इस मन्दिर की इमारत का नक़शा प्राचीन काल का-सा ज्यों का त्यों बना हुआ है। मरम्मत करते समय टूटा-फूटा अंश जैसा का तैसा ही बनाया जाता है।

शिन्तो-पुरोहित बौद्ध-पुरोहितों की भाँति कोई ख़ास वेश-भूषा नहीं धारण करते। वे सबेरे और सन्ध्या की पूजा के समय अलबत्ता एक ख़ास पोशाक पहनते हैं। यह पोशाक ढीली-ढाली चोग़ा जैसी होती है, जिसकी आस्तीनें चौड़ी होती हैं और यह कमर के पास फेंट से बाँध ली जाती है। इस समय वे एक काली टोपी भी लगाते हैं। वे लोग बौद्ध-साधुओं की भाँति ब्रह्मचर्य से रहने को बाध्य नहीं हैं। वे गृहस्थ होते हैं और साधारण लोगों की तरह विवाह एवं दूसरे धन्धे भी करते हैं।

शिन्तो-मन्दिरों के विपरीत बौद्ध-मन्दिर बहुत बड़े और शानदार होते हैं। उनमें रँगाई और कारीगरी भी अद्भुत होती है। 'शिवा' नामक स्थान के बौद्ध-मन्दिर बड़े विशाल और कला-द्योतक हैं। इन मन्दिरों को तोकूगावा-घराने के शोगन-शासकों ने बनवाया था। जापान में इसी स्थान पर बौद्ध-धर्म का महत्त्व प्रकट होता है।

जापान वास्तव में स्वर्गलोक है। प्राय: यहाँ के सभी प्राकृतिक सुन्दर स्थानों को धर्म-स्थानों का रूप दे दिया गया है। प्रत्येक बड़े जंगल में पत्थर के फाटक बने होंगे, जो वहाँ के एकान्त मन्दिरों, बड़े-बड़े मठों तथा देव-मन्दिरों के मार्ग के सूचक हैं। प्रत्येक सुन्दर पहाड़ पर उस पर चढ़ने को सीढ़ियाँ बनी हुई हैं और उस पर जहाँ-जहाँ चौरस भूमि है, वहाँ-वहाँ मन्दिर बने हुए हैं।

जापान में यद्यपि बौद्ध-धर्म पर सरकारी कृपादृष्टि नहीं है, तथापि क्या शिक्षा-प्रचार, क्या राजनीति और क्या प्रचार-कार्य, सभी में वह अपना क़दम आगे रखता है।

तोकूगावा-घराने के शोगनों के समय में जापान में बौद्ध-धर्म के लकड़ी के बड़े-बड़े मन्दिर बने, जो कला की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ थे। निको, शिवा, उइनों में जो मन्दिर हैं वे ऐसे ही हैं। सन् १८६८ के राष्ट्रविप्लव के बाद जब शिन्तो-धर्म राष्ट्रीय धर्म घोषित किया गया तब बौद्ध-मन्दिरों का पूर्व गौरव नहीं रहा। उनका सारा आडम्बर हटा दिया गया और वे शिन्तो-धार्मिक क्रिया करने के अनुरूप बना लिये गये। केवल वही मन्दिर बचने पाये जो किन्हीं ख़ास कारणों से आवश्यक समझे गये। बौद्ध-मन्दिरों की सम्पत्ति सरकार ने ले ली और जिनका लेना मुनासिब नहीं समझा गया उनकी आय घटा दी गई। उपर्युक्त नगरों के प्रसिद्ध बौद्ध-मन्दिरों की अब यही दशा है। तथापि लक्षणों से प्रतीत होता है कि भविष्य

में बौद्ध धर्म फिर पहले-सा गौरव प्राप्त करेगा। इसका एक कारण यह भी है कि जापान के समुराई-श्रेणी के लोग बौद्ध-धर्मानुयायी हैं और वहाँ इसी श्रेणी के लोगों को प्रधानता प्राप्त है।

जापानी लोग हिन्दुओं की तरह बहुदेववादी हैं। उनमें भी अनेक देवी-देवताओं की पूजा प्रचलित है और उनमें धन और धान्य के ७ देवताओं का बड़ा महत्त्व है। इनमें कुछ बौद्ध-धर्म के तो कुछ शिन्तो-धर्म के देवता हैं।

शिन्तो-धर्म १२ सम्प्रदायों में विभक्त है और बौद्ध-धर्म १३ सम्प्रदायों में। यही दो वहाँ के प्रधान धर्म हैं। शिन्तो-धर्म के मन्दिरों की संख्या चौरासी हज़ार से ऊपर है और ७१ हज़ार से ऊपर बौद्ध-मन्दिर हैं। इनके सिवा लगभग २ लाख मन्दिर भूतपूर्व प्रसिद्ध-प्रसिद्ध सम्राटों के होंगे, जिनमें उनकी पूजा होती है। अब ईसाइयों के गिरजा-घर भी एक हज़ार से कुछ ऊपर हो गये हैं।

कहने को तो जापानियों का राष्ट्रीय धर्म शिन्तो-धर्म है और वहाँ के समुराई घरानों के लोग बौद्ध-धर्म मानते हैं, परन्तु वास्तव में जापानियों का धर्म देशभक्ति है। जिन मृतात्माओं को वे अपने घरों में या राष्ट्रीय त्योहारों के अवसर पर पूजते हैं वे उन्हीं के पूर्वज हैं। इसके सिवा वे 'यसुकुनी जिंजा' नाम का जो राष्ट्रीय त्योहार मनाते हैं उसमें वे अपने उन योद्धाओं के प्रति सम्मान प्रकट करते हैं जिन्होंने देश के

लिए अपने प्राण दिये हैं। वीर-पूजा का यह भाव वहाँ पहले से ही चला आता है। इसने सारी जापानी जाति को देश के लिए मर मिटने के लिए एकता के सूत्र में बाँध दिया है। इसी से युद्ध-काल में जहाँ देश की सेनायें शत्रु से लोहा लेती रहती हैं, वहाँ सरकार को घर में राजद्रोह या विद्रोह का भय नहीं होता।

आठवाँ अध्याय

त्योहार

जापानी लोग बड़े आमोद-प्रिय होते हैं। हिन्दुओं की भाँति उनके यहाँ भी अनेक त्योहार मनाये जाते हैं। इस समय जापान में दो तरह के त्योहार मनाये जाते हैं। एक प्राचीन और दूसरे नवीन। नवीन त्योहारों का चलन सरकार की ओर से हुआ है और ये ऐतिहासिक घटनाओं की स्मृति में मनाये जाते हैं। परन्तु इन त्योहारों ने व्यापक रूप नहीं धारण किया है। इनका प्रचार बड़े-बड़े नगरों तथा उनके आस-पास ही तक है। हाँ, प्राचीन त्योहारों का देश में ख़ासा प्रचार है और वे बड़ी धूम-धाम से मनाये जाते हैं। उनमें सभी श्रेणी के लोग बड़े उत्साह के साथ भाग लेते हैं।

प्राचीन त्योहारों में एक 'इनरीसमा' का त्योहार है। इसे हम अन्नपूर्णा माता का उत्सव कह सकते हैं। यह त्योहार मार्च के महीने में पड़ता है, और इस दिन अन्नपूर्णा देवी के मन्दिर ख़ूब सजाये जाते हैं और देवी का बड़े भक्ति-भाव से पूजा-पाठ होता है। इस देवी का वाहन लोमड़ी है। अतएव इस अवसर पर लोग अपने दरवाज़े पर काग़ज़ पर लोमड़ी का चित्र बनाकर चिपकाते हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करने

से उनका मङ्गल होगा। इसके सिवा लोग लोमड़ी को अलौकिक शक्ति-सम्पन्न मानते हैं। हाँ, शिक्षित लोगों का ऐसा विश्वास नहीं है।

जापान में मई का महीना बहुत ही अधिक आनन्ददायक होता है। इन दिनों ऋतु साफ़-सुथरी रहती है। लोग अपनी खेती-बारी के कामों में व्यस्त रहते हैं। जहाँ देखो सर्वत्र चहल-पहल ही दिखाई देती है। जौ, गेहूँ और अरहर के खेत पककर तैयार हो जाते हैं। चाय की पत्तियाँ भी इन्हीं दिनों चुनी जाती हैं। इस समय ओले पड़ने का बड़ा भय रहता है। अतएव लोग ओलों के देवता की पूजा करते हैं। इसे हम इन्द्र-देव की पूजा कह सकते हैं। इस देवता की पूजा उन ज़िलों में भी ख़ूब धूम-धाम के साथ होती है, जहाँ रेशम बहुत अधिक पैदा होता है। रेशम के कीड़े पालने के लिए शहतूत के वृक्षों की रक्षा ओलों से आवश्यक है ही। अतएव इस देवता के मन्दिरों में ख़ूब धूम-धाम के साथ इसकी पूजा होती है।

परन्तु जापान में दो त्योहार बड़े लोकप्रिय हैं। एक का उत्सव धान की फ़सल तैयार होने पर पहली उपज देवताओं को अर्पण करने के लिए होता है। दूसरे के उत्सव के समय सम्राट् या उनका ख़ास प्रतिनिधि प्राचीन मन्दिर में नये चावलों का भोग लगाता है। पहले उत्सव को जापानी जनता बड़े धूम-धाम से मनाती है। सभी गाँवों के मन्दिरों में लोग एकत्र होते हैं और देवताओं को बढ़िया से बढ़िया नये चावलों का भोग लगाते

हैं। उस समय वे मन्दिर के आसपास आनन्द मनाते और देवता को प्रसन्न करने के लिए एक प्रकार का ख़ास नाच नाचते हैं, जो वहाँ प्राचीन समय से प्रचलित है। भिन्न-भिन्न गाँव अपना-अपना उत्सव भिन्न-भिन्न दिनों में मनाते हैं। ऐसा करने से पड़ोस के गाँवों के निवासी एक दूसरे के उत्सव में शामिल होकर आनन्द उठाते हैं और परस्पर प्रेम बढ़ाते हैं।

जापान की देहातों में एक और भी सुन्दर त्योहार मनाया जाता है। यह गर्मी में पड़ता है और इसमें वहाँ के निवासी इबिसू नामक अपने एक प्रधान देवता का उत्सव करते हैं। उनका विश्वास है कि इस देवता को प्रसन्न करने से उन्हें धन की प्राप्ति होगी, क्योंकि इसी देवता को वे अपना भाग्य-विधाता मानते हैं। अतएव लोग इसे प्रसन्न करने के लिए इसके मन्दिर में स्वयं भी प्रसन्न-मन होकर जाते हैं और तरह-तरह के आनन्ददायक कार्य करके आनन्दित होते हैं। उदाहरण के लिए किशू-प्रान्त के लोग इस उत्सव पर जब मन्दिर में देवता को भेंट चढ़ाने जाते हैं तब मन्दिर के समीप पहुँचने पर दर्शकों के समूह का अगुआ चिल्लाकर कहता है कि सदा की भाँति अब हमको यहाँ हँसना चाहिए। इस पर साथ के सब लोग एक साथ हँस पड़ते हैं।

जापानी लोग ८० लाख देवता मानते हैं। इस उत्सव के समय ये सब देवता इजूमो के बड़े शिन्तो-मन्दिर में एकत्र होते हैं। परन्तु उनका यह इबिसू देवता बहरा होने से उस

मन्दिर के देवता की पुकार नहीं सुन पाता है, अतएव यह वहाँ नहीं जाता। फलतः इसके भक्त इसे प्रसन्न करने के लिए आनन्दमङ्गल करते हैं और इसे रिझाते हैं।

इसी प्रकार चेरी वृक्ष के फूलने के समय जापानी लोग बड़ा उत्सव करते हैं। यह उनका एक जातीय उत्सव है। इसके फूलने पर उत्सव की हफ़्तों पहले से तैयारी होने लगती है। इस अवसर पर आबाल-वृद्ध-वनिता सभी चेरी वृक्षों के कुञ्जों में जाकर उन्हें गुलाबी फूलों से लदे देखकर अपनी आँखें ठण्डी करते हैं। जापान की राजधानी टोकियो के मुकोजिमा नामक स्थान पर इस अवसर पर जो लोक-समूह एकत्र होता है उससे इस उत्सव का महत्त्व भले प्रकार प्रकट होता है। सभी लोग क्या स्त्री और क्या पुरुष फूलों का दर्शन कर आनन्द मनाते और क़हक़हा लगाते हैं। थक जाने पर चाय पीते हैं और गप-शप करते हुए वहाँ विश्राम करते हैं। चावल की शराब भी पीते हैं, परन्तु इसके पीनेवाले कम होते हैं। और जो पीते भी हैं वे इतनी कम मात्रा में पीते हैं कि मतवाले नहीं होते। परन्तु अधिकांश माता-पिता और उनके लड़के-लड़कियाँ चाय और रोटी खा-पीकर यह वार्षिक उत्सव मनाते और प्रसन्न होते हैं। अन्त में अपने घरों को लौट जाते हैं।

नये साल का पहला दिन भी जापान में बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। इस अवसर की यह विशेषता है कि इस दिन के पहले सभी जापानी अपना ऋण अदा कर देते हैं।

हाँ, यदि किसी का महाजन क़र्ज़ बना रहने देता है तो बात दूसरी है। नहीं तो सभी लोग नये वर्ष के प्रारम्भ होने के पहले अपना ऋण भुगता देना अपना एक-मात्र कर्तव्य समझते हैं, क्योंकि जो जापानी नये वर्ष के प्रारम्भ होने के पहले अपना ऋण नहीं चुकता करता वह बेईमान समझा जाता है। अतएव जो लोग ऋण भुगताने में असमर्थ होते हैं वे गृहस्थी की चीज़ें बेचकर ऋण चुकाना अपना धर्म समझते हैं। अतएव नये दिन के एक दिन पहले टोकियो में एक बड़ा भारी मेला लगता है। इस मेले में लोग अपना ऋण भुगतान करने के लिए अपने घर की तरह-तरह की चीज़ें बेचने को लाते हैं। जो पहले कभी दूकान नहीं करते थे वे भी इस दिन दूकान लगाते हैं। ये दूकानें मीलों दूर तक लगती हैं। लोगों को आकृष्ट करने के लिए लोग अपनी दूकानों को काग़ज़ की लालटेनों से प्रकाशित करते हैं। यह मेला एक प्रकार का गुदड़ी-बाज़ार कहा जा सकता है। इसके साथ ही फूलों का एक आवश्यक और सुन्दर बाज़ार भी लगता है। क्योंकि दूसरे ही दिन नये वर्ष का नया दिन मनाया जाता है। अतएव घर सजाने के लिए फूलों की आवश्यकता होती है। नये दिन के अवसर पर लोग अपने घरों को विशेष रूप से सजाते हैं। घर के दरवाज़े के दोनों ओर हरी डालियों की मेहराब-सी बना दी जाती है और इनके पीछे दोनों ओर बाँस के दो स्तम्भ खड़े कर दिये जाते हैं। ये बाँस घास की रस्सी से

ऊपर से एक दूसरे से बाँध दिये जाते हैं। डालियों की मेह-राब के बीच में मछली लटकाई जाती है। घर के दरवाज़े की यह सजावट बाहरवालों के लिए विचित्र बात भले ही मालूम दे, परन्तु जापानियों के लिए यह ख़ास अर्थ रखती है, इसे वे कल्याणदायक मानते हैं।

इस प्रकार जापानी लोग नये साल के पहले दिन के उत्सव पर भिन्न-भिन्न प्रकार से अपने घरों में बड़ी सजावट करते हैं। उनकी यही सजावट ६ या ७ जनवरी तक कहीं-कहीं बनी रहने दी जाती है। परन्तु साधारण तौर से वह प्राय: ३ जन-वरी को निकाल दी जाती है। नये साल के नये दिन का यह उत्सव भी जापानियों का एक प्रधान जातीय त्योहार है।

संसार में ऐसे देश कुछ ही निकलेंगे जहाँ छोटे-छोटे बच्चों का भी अपना कोई जातीय त्योहार होता हो। इस सम्बन्ध में जापान के बच्चों को विशेष सुभीता है, क्योंकि उनके लिए वहाँ सारे देश में गुड़ियों का उत्सव मनाया जाता है। यह उत्सव ३ मार्च को पड़ता है और यह वहाँ की लड़कियों का त्योहार है। लड़कीवाले घरों में इस त्योहार की तैयारी फ़रवरी के अन्तिम समय से ही प्रारम्भ हो जाती है। क्या बड़े नगरों में, क्या छोटे नगरों में और क्या गाँवों में, गुड़ियों के सन्दूक़ सुरक्षित स्थानों में निकाले जाते हैं। जापानी लोग आग के डर से अपनी बहुमूल्य चीज़ें अपने घरों में न रखकर किसी ऐसे स्थान में रखते हैं जिसमें आग लगने का डर नहीं होता है।

ऐसे ही स्थानों में गुड़ियों के सन्दूक़ भी रक्खे रहते हैं। सन्दूक़ निकालकर खोले जाते हैं और उनके भीतर से गुड़ियाँ और उनका सामान निकालकर एक कमरे में रक्खा जाता है, जो इसी के लिए अलग कर दिया जाता है। दाल, चावल, शक्कर, ख़ास रोटियाँ, एक प्रकार की सफ़ेद रंग की गाढ़ी पतली शराब (जिसे इस ख़ास उत्सव पर केवल लड़कियाँ और उनकी सखियाँ ही पीती हैं) आदि वस्तुएँ तैयार की जाती हैं। जो लड़कियाँ ये सब चीज़ बनाने में समर्थ होती हैं वे इनके बनाने में विशेष रूप से भाग लेती हैं। तैयार हो जाने पर ये सब गुड़ियों के आगे सजाकर रक्खी जाती हैं। इस अवसर पर लड़कियाँ एक विशेष पोशाक पहनती हैं। पोशाक के पीठ की ओर के हिस्से पर ठीक बीचोबीच तथा आस्तीनों पर अपने-अपने घराने के चिह्न ज़री से कढ़े रहते हैं। इस प्रकार सजकर लड़कियाँ अपनी सखियों और सम्बन्धियों से मिलती-जुलती हैं और अपना गुड़ियों के खेल का आनन्द लेती हैं।

जिन लड़कियों के घर में गुड़ियों का सङ्ग्रह नहीं होता वे उस अवसर पर उन्हें मोल लेकर अपना त्योहार मनाती हैं। त्योहार के पहले से ही गुड़ियाँ और उनका सामान बाज़ारों में बिकने लग जाता है। जापान में इनके तीन-चार कारख़ाने भी हैं। साधारण गुड़ियाँ तो बाज़ारों में यों भी बिका करती हैं, परन्तु इस त्योहार की गुड़ियाँ हर समय सुलभ नहीं हैं। वे केवल त्योहार के हफ़्ते दो हफ़्ते से पहले

बिकने लगती हैं। और हफ्ते दो हफ्ते बाद तक बिकती रहती हैं। यह त्योहार टोकियो में बड़े आयोजन के साथ मनाया जाता है।

ऊँची श्रेणी के लोगों में तथा धनवान् परिवारों की लड़कियों का गुड़ियों का संग्रह प्रतिवर्ष बढ़ता रहता है। उनकी गुड़ियाँ भी अनेक तरह की एवं सुन्दर होती हैं। यह त्योहार जापान का एक प्राचीन त्योहार है। इसके वहाँ १,४०० वर्ष से प्रचलित होने का पता लगा है।

इसी प्रकार लड़कों के जन्म-दिन का भी त्योहार मनाया जाता है। यह त्योहार मई में पड़ता है और इस अवसर पर नक़ली हथियारों की उसी प्रकार धूम रहती है, जैसे लड़कियों के त्योहार में गुड़ियों की। इस अवसर पर देश भर के बालकों की वर्षगाँठ मना ली जाती है। इस दिन सभी पुत्रवाले कुटुम्ब अपने-अपने दरवाज़े पर एक लट्ठे से कृत्रिम मछली टाँगते हैं। ऐसा करना शुभ समझा जाता है।

नवाँ अध्याय

शिक्षा की व्यवस्था

जापान में बहुत ही अच्छे ढङ्ग की शिक्षा-प्रणाली का प्रचार है। उस शिक्षा-प्रणाली में राष्ट्र-रचना का सबसे अधिक ध्यान रक्खा गया है। परन्तु विशेष बात तो यह है कि विद्यार्थियों को शारीरिक उन्नति और उनके स्वास्थ्य की ओर वहाँ के शिक्षा-विभाग का पूरा ध्यान रहता है। इसके लिए हज़ारों की संख्या में डाक्टर नियुक्त हैं, जो इस सम्बन्ध की देख-भाल ही नहीं करते हैं, किन्तु उन्हें सफ़ाई आदि के सम्बन्ध में उपदेश देकर उनको स्वस्थ रहने की शिक्षा भी देते हैं। शारीरिक उन्नति के लिए फ़ौजी ढङ्ग की कसरतों की स्कूलों में व्यवस्था की गई है। पढ़ने-लिखने की शिक्षा देने के साथ-साथ शारीरिक शिक्षा देकर सब प्रकार से समर्थ नागरिक बनाने का काम वहाँ का शिक्षा-विभाग विशेष रूप से कर रहा है।

जापानी शिक्षा-पद्धति में धर्म-शिक्षा का प्रबन्ध नहीं किया गया है। जापानी धार्मिक शिक्षा का महत्त्व मानते हैं, परन्तु उनका मत है कि उसकी शिक्षा का स्थान स्कूल नहीं है। उनका कहना है कि धर्म की रहस्यमयी बातें छोटी उम्र के

बालक नहीं समझ पाते और वे भ्रम में पड़ जाते हैं। इसी धारणा से वहाँ की शिक्षा-प्रणाली में धर्म-शिक्षा को स्थान नहीं दिया गया है। परन्तु सदाचार की शिक्षा की पूरी-पूरी व्यवस्था की गई है। यहाँ तक कि इतिहास, भूगोल, विज्ञान और संगीत एवं ड्राइंग तक की शिक्षा देते समय भी शिक्षक सदाचार की शिक्षा देने का ध्यान बराबर रखते हैं।

जापानी शिक्षा-पद्धति में विद्यार्थियों की योग्यता की थाह परीक्षा से नहीं ली जाती है। वहाँ जो परीक्षायें ली जाती हैं वे केवल प्रवेशिका परीक्षायें हैं। इन परीक्षाओं में जो पास हो जाते हैं वही ऊँचे स्कूलों या विश्वविद्यालयों में भर्ती होने पाते हैं। जापान में परीक्षा योग्यता की कसौटी नहीं है, किन्तु वह वहाँ रोक-थाम का काम करती है।

जापान में जो शिक्षा-पद्धति प्रचलित है उसका आदर्श यूनाइटेड स्टेट्स की शिक्षा-पद्धति है। इसके सिवा उसे अप-टुडेट बनाये रखने के लिए उसमें बराबर सुधार होता रहता है। वहाँ के प्रत्येक स्कूल में नैतिक शिक्षा, शारीरिक व्यायाम आदि का भी लिखने-पढ़ने के साथ-साथ प्रबन्ध है। कृषि-प्रधान ज़िलों में कृषि की शिक्षा की व्यवस्था लड़के-लड़कियों दोनों के लिए की गई है। जिन ज़िलों में तरह-तरह के उद्योग-धन्धों की प्रधानता है, वहाँ वैसी शिक्षा का प्रबन्ध किया गया है। वहाँ की शिक्षा-पद्धति में स्त्री-शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया गया है।



जापानी कारीगर

जापानियों को शिक्षा से बहुत अधिक प्रेम है। यहाँ तक कि वे अब अशिक्षित माताओं के संसर्ग में अपनी सन्तान के प्रारम्भिक छः वर्ष भी नहीं बिताने देना चाहते, क्योंकि ऐसा ही होने से वे भविष्य में देश के अच्छे नागरिक हो सकेंगे। इसी से वहाँ अनिवार्य शिक्षा जारी की गई, जिससे देश का प्रत्येक लड़का और प्रत्येक लड़की छः वर्ष का होते ही स्कूल में भर्ती हो जाने को बाध्य है। जापान में पढ़ना-लिखना पहले भी था। परन्तु पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली का प्रचार करने से उसने व्यापक रूप धारण कर लिया। इसके सिवा जहाँ पहले बौद्ध-साहित्य का ही अधिक पठन-पाठन होता था, वहाँ अब नाना प्रकार के उपयोगी विषयों के पढ़ने-लिखने की ओर विद्वानों की प्रवृत्ति हुई है।

जापान में प्रारम्भिक शिक्षा का बहुत ही अच्छा प्रबन्ध है। एक भी ऐसा गाँव न होगा, जहाँ प्रारम्भिक शिक्षा का स्कूल न हो। सरकार ने प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य कर दी है। अतएव प्रत्येक बच्चे को पढ़ना पड़ता है। छः वर्ष का होते ही वह स्कूल में भर्ती हो जाता है, और कम से कम साधारण प्रारम्भिक स्कूल की पढ़ाई तक उसे अवश्य पढ़ना पड़ता है। ऐसे स्कूलों की पढ़ाई चार वर्ष में समाप्त होती है।

प्रारम्भिक शालाओं की दो श्रेणियाँ हैं। एक साधारण प्रारम्भिक स्कूलों की और दूसरा उच्च प्रारम्भिक स्कूलों की। जब लड़का या लड़की नौ वर्ष की होती है तब वह उच्च

प्रारम्भिक स्कूल में भर्ती होती है। इन स्कूलों में भी साधारण स्कूलों में पढ़ाये जानेवाले विषय तो पढ़ाये ही जाते हैं, उनके सिवा विज्ञान, कृषि, व्यापार और कारीगरी की भी शिक्षा दी जाती है। परन्तु लड़कियों को इन अधिक विषयों के स्थान में केवल सिलाई की ही शिक्षा दी जाती है। इन उच्च प्रारम्भिक स्कूलों की पढ़ाई साधारण प्रारम्भिक स्कूलों की अपेक्षा कुछ ऊँची होती है।

परन्तु इन दोनों श्रेणी के स्कूलों में लड़की-लड़के बिना किसी तरह के भेद-भाव के भर्ती किये जाते हैं। केवल पढ़ने-लिखने की सुविधा के विचार से प्रायः लड़के-लड़कियाँ पृथक्-पृथक् दर्जों में शिक्षा पाती हैं।

नगरों में इन स्कूलों के सिवा किंडरगार्टन श्रेणी के अनेक स्कूल खुले हुए हैं। इन स्कूलों में तीन वर्ष की उम्र के बच्चे छः वर्ष की उम्र तक शिक्षा पाते हैं।

प्रारम्भिक शिक्षा के बाद लड़कों और लड़कियों की पढ़ाई अलग अलग होती है। लड़के उच्च श्रेणी के स्कूलों में और लड़कियाँ नार्मल स्कूलों में पढ़ती हैं।

कम से कम साधारण प्रायमरी स्कूल तक सभी को पढ़ना पड़ता है। और तो शिक्षा १४ वर्ष की उम्र तक बराबर दी जाती है। इस प्रकार वहाँ के प्रायमरी स्कूलों की पढ़ाई केवल ८ वर्ष में खतम हो जाती है।

प्रायमरी स्कूलों के बाद मिडिल स्कूल की पढ़ाई शुरू होती है। मिडिल स्कूलों में भर्ती होने के लिए छात्र को २ वर्ष तक उसका प्रारम्भिक अध्ययन करना पड़ता है। तब वह मिडिल स्कूल में भर्ती हो सकता है। यहाँ विद्यार्थियों को क़ानून और अर्थ-शास्त्र की भी शिक्षा दी जाती है। मिडिल-पास जापानी विद्यार्थी चाहे तो आगे पढ़े, चाहे नौकरी करे, चाहे व्यापार के क्षेत्र में प्रवेश करे और चाहे सेना में भर्ती हो जाय। ऊँची शिक्षा प्राप्त करने के लिए उसे मिडिल पास कर लेने के बाद ऊँचे दर्जे के स्कूल में शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है, जहाँ से वह विश्वविद्यालय में प्रवेश करता है। मिडिल स्कूल के विद्यार्थियों को देश के क़ानून के अनुसार सेना में ३ वर्ष तक काम नहीं करना पड़ता। २८ वर्ष की उम्र तक वे सेना में काम करने से बरी रहते हैं। मिडिल-पास विद्यार्थी को एक वर्ष तक सेना में स्वयंसेवक के रूप में काम करना पड़ता है। विश्वविद्यालयों में जापानी-भाषा की पाठ्य पुस्तकों के अभाव से अँगरेज़ी, फ्रेंच और जर्मन-भाषाओं के द्वारा शिक्षा दी जाती है। परन्तु विदेशी भाषाओं की शिक्षा उनका साहित्य समझ लेने भर की दी जाती है। विश्वविद्यालयों में तीन विभाग होते हैं। एक में क़ानून या साहित्य, दूसरे में इंजिनियरी, विज्ञान और कृषि, तीसरे में चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा दी जाती है। यहाँ ३ वर्ष की पढ़ाई है।

इस प्रकार जापान की सरकार ने अपने देश को शिक्षित बनाने का भारी प्रयत्न किया है और आज वहाँ ९५ फ़ी सदी

साक्षर हो गये हैं। इस सम्बन्ध में भी संसार में जर्मनी, ग्रेट-ब्रिटेन के बाद उसी का नंबर है।

जापानी छात्र प्रायः ग़रीब होते हैं, तो भी उनमें कुछ विद्यार्थी विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त करने का प्रबन्ध कर ही लेते हैं। यदि कोई छात्र तेज़ निकला तो उसके संरक्षक उसे ऊँची से ऊँची शिक्षा दिलाने में कुछ उठा नहीं रखते। यहाँ तक कि लोग नीच काम तक करके धन पैदा करते हैं और अपने लड़के की पढ़ाई का ख़र्च देते हैं। एक बार तो एक विद्यार्थी की बहन ने अपने भाई की पढ़ाई का ख़र्च देने के लिए नर्तकी तक का पेशा किया था। यद्यपि जापान में नर्तकी का पेशा हीन नहीं माना जाता है, तो भी वैसी इज्ज़त भी नहीं है। उसके सिवा वहाँ ऐसी अनेक छोटी-छोटी सभायें भी क़ायम हैं जो अपनी जवार के होनहार ग़रीब विद्यार्थियों की धन से सहायता करती हैं। बाद को जब ऐसे विद्यार्थी जीवन में प्रवेश करते हैं तब वे सूद-सहित या केवल मूल मूल सारा रुपया उक्त सभा को वापस कर देते हैं। इसके सिवा एक सुविधा यह भी है कि वहाँ के बड़े-बड़े राजकर्म्मचारी और महाजन लोग सभी एक-दो नवयुवक अपने अपने घरों में रखते हैं। इन्हें वे खाना-पीना दे पढ़ने का अवसर देते हैं। ये युवक भी इसके बदले में उनके घर का काम कर देते हैं। कभी कभी वे इन्हें ख़र्च भी देते हैं। इस तरह किसी के घर रह और उसका काम कर विद्योपार्जन करना वहाँ बुरा नहीं समझा जाता है। यह प्रणाली बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है,

अतएव इसकी वहाँ जड़ जम गई है। इस प्रकार शिक्षा पाये हुए अनेक युवक ऊँचे-ऊँचे पदों पर पहुँच गये हैं।

जापान में सभी प्रकार की विद्याओं की शिक्षा की पूरी-पूरी व्यवस्था है। पाश्चात्य देशों की शिक्षा-प्रणाली के अनुसार वहाँ सभी विषयों की शिक्षा की व्यवस्था की गई है। यह इसी शिक्षा का शुभ परिणाम है कि जापानियों ने विज्ञान और चिकित्सा के क्षेत्र में खासी सफलता प्राप्त की है। जापानी वैज्ञानिकों ने नाना प्रकार के आविष्कार भी किये हैं, जिससे उनकी कीर्त्ति ही नहीं हुई है, किन्तु मानव-जाति का हित भी हुआ है। जापान भूकम्पों का देश है। अतएव जापानियों ने टोरोमीटर नामक एक ऐसा उपयोगी यन्त्र बनाया है जिससे भूकम्प होने की उन्हें २४ घण्टे पहले सूचना मिल जाती है। इसी प्रकार चिकित्सा-शास्त्र में वे इतना अधिक निपुण हो गये हैं कि इस सम्बन्ध में वे बड़े से बड़े किसी भी पाश्चात्य देश से बराबरी कर सकते हैं।

दसवाँ अध्याय

खेती-बारी और उद्योग-धन्धे

प्राचीन काल में जापानी लोग अपने देश को 'तृणावृत धान्यपूर्ण उपजाऊ देश' कहते थे। इससे प्रकट होता है कि जापान में कृषि का धन्धा बहुत पहले से प्रचलित है और अधिकांश प्रजा का निर्वाह खेती से ही होता रहा है। जापानियों की एक पुरानी कहावत भी इस आशय की है कि देश की समृद्धि की नींव खेती है। जापानियों की अधिक संख्या देहाती है। कुल आबादी के कोई ८० फ़ी सदी लोग गाँवों में ही निवास करते हैं। यही लोग देशवासियों के लिए अन्न आदि सामग्री उत्पन्न करते हैं। वहाँ खेती के योग्य जितनी भूमि है वह सब छोटे-छोटे किसानों में बँटी हुई है और प्रत्येक किसान अपनी भूमि का स्वामी है। जापान के क्षेत्रफल का केवल १२ प्रतिशतक भू-भाग खेती के योग्य है, अतएव वहाँ के किसानों को खेती में घोर परिश्रम करके देश की आवश्यकता की पूर्ति करनी पड़ती है। उनकी खेती का ढङ्ग भी बाबा आदम के समय का ही अभी तक प्रचलित है। वैज्ञानिक ढङ्ग की कृषि-प्रणाली का प्रचार वहाँ नहीं हुआ है। छोटे-छोटे खेत होने के कारण उसके प्रचार की वहाँ सुविधा भी नहीं है।

वास्तव में जापान भी भारत की ही तरह कृषिप्रधान देश है। वहाँ कोई डेढ़ करोड़ एकड़ भूमि में खेती होती है और इस धन्धे में वहाँ के पचपन हज़ार परिवार लगे हुए हैं। इस भू-भाग के आधे भाग में केवल धान की खेती होती है। पानी भी ख़ूब बरसता है। इसके सिवा छोटी-बड़ी नदियों की अधिक संख्या के कारण सिंचाई की सुविधा सर्वत्र प्राप्त है। वहाँ जून और जुलाई में वर्षा होती है, जिससे धान की फ़सल का काम चलता है। खेतों के छोटे-छोटे होने के कारण आधुनिक यन्त्रों का उपयोग जापान में नाम-मात्र को ही हो सका है। तो भी प्राचीन पद्धति में भी बहुत कुछ सुधार किया गया है। खेतों की पैदावार बढ़ाने के लिए तरह-तरह की खादों का अधिक मात्रा में उपयोग किया गया है। धान की खेती देश के समतल भाग में होती है। जौ, गेहूँ, अरहर आदि धान्य ऊँचे भाग में बोये जाते हैं। इसके सिवा वहाँ का जलवायु भी बहुत ही उपयुक्त है। छोटे-छोटे खेत साधारण किसानों के हाथ में होने के कारण वे खेती के काम में बड़ी मेहनत और फ़सल की देख-रेख बड़ी सावधानी से करते हैं। वहाँ के अधिकांश किसान दो-चार एकड़ भूमि से अधिक के जोत नहीं जोतते हैं।

जापान में खेती के योग्य अधिक भूमि नहीं है, अतएव किसानों को बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। वे उस भूमि में तिल भर भूमि ख़ाली छोड़ रखना नहीं पसन्द करते। यहाँ

तक कि पहाड़ी और समुद्रतटवर्ती ऊबड़-खाबड़ भू-भागों में भी नीचे से ऊपर तक सुन्दर सुन्दर खेत बनाकर परिश्रमी किसान अपने कौशल का परिचय देते हैं। भूमि की कमी ने उन्हें परिश्रमशील, धैर्यवान्, सहनशील, सन्तोषी, आत्मनिर्भर और कार्य-पटु बना दिया है। वे अपने स्त्री-बच्चों के साथ निरन्तर खेतों में काम करते रहते हैं। सारा काम हाथों से ही करते हैं, कभी-कभी घोड़े या बैल का भी उपयोग करते हैं। उनके खेती के औज़ार भी पुराने ढङ्ग के ही हैं।

जापान में धान की खेती ही सबसे अधिक होती है। उसकी खेती का दो-तिहाई भू-भाग एक धान की ही खेती में खप जाता है। धान भी वहाँ कोई चार हज़ार प्रकार का पैदा होता है। इसके बोने, लगाने और काटने के समय जापानी लोगों को मुस्तैदी और प्रसन्नता का पूरा-पूरा दृश्य दिखाई देता है। धान की उपज में संसार में जापान का तीसरा नंबर है, परन्तु जैसा बढ़िया चावल वहाँ उत्पन्न होता है, वैसा दूसरी जगह नहीं होता। वहाँ धान की खेती पुराने ज़माने की ही रीति के अनुसार अभी तक होती है, उसमें किसी तरह का फेरफार नहीं हुआ है। मई के महीने में धान बाड़ से उखाड़कर खेतों में लगाया जाता है। उस समय का दृश्य देखने लायक़ होता है। कीचड़ मिले हुए घुटने भर गहरे पानी में हज़ारों की संख्या में खड़े स्त्री-पुरुष धान के पौधे गाड़ते और गीत गाते दिखाई

देंगे। जापान की यह छटा भारत के बंगाल-प्रान्त में देखने को मिल जाती है। जब फ़सल पकने पर होती है तब जापानी किसान अपनी फ़सल की रक्षा के लिए यन्त्र-मन्त्र भी करते हैं। वे अपने खेतों में छोटी-छोटी काग़ज़ की झंडियाँ गाड़ते हैं। काग़ज़ पर यन्त्र-मन्त्र लिखे रहते हैं। जापानी किसानों का विश्वास है कि ऐसा करने से कीड़ों और पक्षियों से फ़सल की रक्षा होती है।

इस नई उन्नति के ज़माने में जापान अपने खेती के व्यवसाय को भूल नहीं बैठा है। खेती की भी उसी प्रकार उन्नति हुई है और वह अपने मतलब से भी अधिक अन्न पैदा कर लेता है। और सो भी उतनी ही परिमित भूमि में जो उसे देश में खेती करने के लिए उपलब्ध है।

जापानी किसानों ने अपने परिश्रम से ही अपनी खेती की उपज में वृद्धि की है। उन्होंने अपने खेतों की उपज अच्छी जुताई-बोआई तथा तरह-तरह की खादों का उपयोग करके बढ़ाई है। खेती की शिक्षा का प्रबन्ध भी वहाँ बहुत उत्कृष्ट है। इसके सिवा वहाँ की सरकार कृषि-काल में भी किसानों को बड़ी सहायता करती है। इसके लिए वहाँ कोई २०० से भी अधिक कार्यालय स्थापित हैं, जिनमें कृषि-सम्बन्धी नई-नई बातों के प्रयोग होते हैं। जो प्रयोग उपयोगी सिद्ध होता है उसका किसानों में प्रचार किया जाता है। यहीं खेती के उपयोग में आनेवाली खाद की ओर भी बड़ा ध्यान दिया जाता है। इसके

निरीक्षण तथा व्यवस्था के लिए सरकारी कृषि-विभाग को विशेष प्रबन्ध करना पड़ता है।

खेती के बाद जापान में रेशम और चाय के कारबार का नंबर है। रेशम के कीड़े के पालने का काम अगस्त में होता है। उस समय इसका कारबार करनेवाले रात-दिन अपने काम में लगे रहते हैं। शहतूत की पत्तियों से भरी हुई टोकरियाँ सारे घर में भरी रहती हैं, जिनमें रेशम के अगणित कीड़े निरन्तर कुरकुराया करते हैं। उन दिनों उनके पास कोई शोरगुल नहीं करने पाता। जापानियों का विश्वास है कि वैसा होने से अच्छा रेशम नहीं होता। अतएव घर में किसी प्रकार का कठोर व्यवहार तथा शोर कीड़ों के समीप नहीं होने पाता।

चाय जापान का मुख्य पेय है। यह भी वहाँ चीन से ही पहुँची है। पहले इसका प्रचार राज-दरबार तथा रईसों में ही था, परन्तु अब तो घर-घर हो गया है। वहाँ चाय की पत्तियाँ तब तोड़ी जाती हैं जब उसका वृक्ष तीन वर्ष का हो जाता है। जापान की चाय का अधिकांश वहीं खर्च हो जाता है। जो बचती है वह अमरीका को भेजी जाती है।

इन प्रधान धन्धों के सिवा जापान में मिट्टी के बर्तन भी बहुत बनते हैं तथा हाथीदाँत की कामदार चीज़ें भी बनती हैं। बर्तनों पर दस्तकारी का काम लड़कियाँ ही करती हैं। बर्तन बनाने के अब वहाँ अनेक बड़े-बड़े कारखाने हो गये हैं। जापानी

बर्तन योरप-अमरीका आदि देशों को बहुत भेजे जाते हैं और ये भिन्न-भिन्न ज़िलों में भिन्न-भिन्न प्रकार के बनते हैं। कारखानों के बने बर्तन सस्ते बिकते हैं और साधारण होते हैं। परन्तु जो बर्तन कारीगर लोग अपने घरों में बनाते हैं वे वास्तव में बड़े सुन्दर और कलाद्योतक होते हैं। ऐसे ही बर्तनों के लिए जापान प्रसिद्ध है। ये बर्तन मूल्यवान् भी होते हैं।

जिन नगरों में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव अभी तक नहीं पड़ा है और नये ढङ्ग के कारखानों की धूम-धाम नहीं है उनमें जापानी कला आज भी यह बात प्रमाणित कर रही है कि जापानी लोग वर्तमान काल के सर्व-श्रेष्ठ कारीगर हैं। इन नगरों में जो चीज़ें—नित्य के व्यवहार तक की चीज़ें—बनती हैं, सबमें कुछ न कुछ कला-चातुरी अवश्य दिखाई देगी। यहाँ दूकानों के आगे कारीगर बैठा अपना काम करता दिखाई देगा। उसके एक ओर छोटी-सी तश्तरी में कोई न कोई फूल अवश्य रक्खा होगा, जिससे दर्शक को उसकी सुरुचि का पता लग जाता है। किसी-किसी के पास कोई छोटा बच्चा भी खेलता हुआ मिलेगा या वह अपने पिता का पंखों, लालटेनों, हाथीदाँत, रेशम आदि पर सावधानी से फूल काढ़ना ध्यान से बैठा देखता मिलेगा। इस प्रकार इन कारीगरों की सन्तानें बचपन से सुन्दर-सुन्दर वस्तुएँ देखने की आदी ही नहीं हो जाती हैं, किन्तु उनसे ठीक-ठीक बनाने की क्रिया का भी ज्ञान उन्हें अनजान में ही हो जाता है। इसके सिवा उनके पास बैठकर देखनेवालों

को भी कला का ठीक-ठीक ज्ञान हो जाता है। इसका फल यह हुआ है कि जापान में ऊँचे दर्जे के सौन्दर्य का आदर बढ़ गया है। अतएव वहाँ के कारीगर भी लोकरुचि के अनुसार बढ़िया से बढ़िया कारीगरी कर दिखाने में अपनी ओर से कुछ नहीं उठा रखते। पुराने ज़माने में अच्छे-अच्छे कारीगरों को वहाँ के रईस आश्रय देते थे। उससे कला बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। परन्तु इधर जब से जापान की बनी हुई अद्भुत सुन्दर चीज़ों की माँग बढ़ी तब से वहाँ के कारीगरों का ध्यान कारीगरी दिखाने की ओर नहीं रहा। जापान के बड़े-बड़े नगरों में जापानी कारीगरी के जो नमूने भिन्न-भिन्न चीज़ों के रूप में दिखाई देते हैं वे ऐसी ही माँग के कुफल हैं। इनमें वैसी कारीगरी अब नहीं होती, क्योंकि कारीगरों का ध्यान कारीगरी दिखाने की अपेक्षा अपनी चीज़ें अधिक संख्या में बनाने की ओर चला गया है। परन्तु अब प्राचीन कारीगरी की रक्षा की ओर लोगों का ध्यान गया है।

जापान में मछली मारने का भी बड़ा भारी धन्धा होता है। उसका समुद्र-तट सभी प्रकार की मछलियों से पूर्ण है। जापानी मछली खाते भी ख़ूब हैं। यह उनके भोज्य की एक मुख्य सामग्री है। इसके सिवा मछली मारने के धन्धे से जापान को एक यह लाभ हुआ है कि उसको अपने जहाज़ी बेड़े के लिए जवान मिल जाते हैं। समुद्रतटवर्ती ज़िलों से ही जल-सैनिकों की भर्ती होती है। यहाँ कोई २० लाख मछुये बसते हैं। ये लोग समुद्र

पर की कठिनाइयों से वंश-परम्परा से अभ्यस्त होते हैं। इन्हीं के साहस-पूर्ण कार्यों ने जापान के जहाज़ी बेड़े का महत्त्व क़ायम किया है। ये लोग जलमग्न नौकाओं में अधिक देर तक जल के भीतर रहकर काम करते रहते हैं। इस सम्बन्ध में अन्य देशों के जलमग्न नौकाओं के योद्धा इनकी बराबरी नहीं कर सकते हैं।

परन्तु नये ढङ्ग के उद्योग-धन्धों के प्रचार से जापान अब एक प्रधान कारबारी देश हो गया है। परन्तु इनकी वृद्धि से कृषि आदि पुराने धन्धों को चोट नहीं पहुँचने पाई है। नये उद्योग-धन्धों के प्रचार की आवश्यकता इसलिए भी हुई कि जापान की जन-संख्या वृद्धि पर है। अतएव यह आवश्यक समझा गया कि वृद्धिंगत जन-संख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए खेती के साथ-साथ उद्योग-धन्धे और वाणिज्य-व्यवसाय बढ़ाये जायँ।

नव-युग के प्रवर्तन के पहले जापान में उद्योग-धन्धे करने-वालों की समाज में क़द्र नहीं थी। वे नीच समझे जाते थे। व्यापारियों की अपेक्षा किसानों का दर्जा ऊँचा था। अतएव यह भेद-भाव मिटाने के लिए उच्च सैनिक जाति के कुछ देश-भक्त आगे आये और नीच समझे जानेवाले धन्धे करना उन्होंने प्रारम्भ कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि जापान में अब इस सम्बन्ध में ऊँच-नीच का भाव नहीं रहा और सभी लोग उद्योग-धन्धों में लग गये हैं। यही नहीं, उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिए सरकार ने भी पूरी सहायता दी है। भिन्न-भिन्न

धन्धों के विशेषज्ञ बाहर से बुलाकर उनकी सहायता से नये-नये उद्योग प्रारम्भ किये गये। इसके सिवा अनेक होनहार युवक उद्योग-धन्धों की कला सीखने के लिए भिन्न-भिन्न पाश्चात्य देशों को भेजे गये।

इन प्रयत्नों का परिणाम यह हुआ कि जहाँ पहले केवल चर्खों और कर्घों से ही काम होता था, वहाँ बड़े-बड़े पुतलीघर खुल गये और जापान वस्त्र के कारबार में इँग्लैंड आदि देशों का सामना करने लगा। इसी प्रकार ऊन, रेशम, काग़ज़, काँच, सिमेंट आदि के कारख़ाने खोले गये। जहाज़ भी बनने लगे और लोहे का भी कारबार शुरू हुआ। मतलब यह है कि अपनी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेने के सिवा वह संसार के व्यवसाय-क्षेत्र में क़दम बढ़ाने को भी प्रवृत्त हुआ और आज वह सफल-मनोरथ है।

औद्योगिक उन्नति के लिए सरकार ने भिन्न-भिन्न धन्धों में आर्थिक सहायता देकर उन्हें समुन्नत करने में जो काम किया है सो तो किया ही है, इस सम्बन्ध में उसने सबसे बढ़कर यह काम किया है कि हज़ारों की संख्या में टेकनिकल स्कूल खोलकर लोगों को उद्योग-धन्धों की शिक्षा सुलभ कर दी है। यह सरकार की ही शुभेच्छा का सुफल है कि आज जापान कृषि-प्रधान होने के साथ-साथ व्यवसाय-प्रधान भी हो गया है। वहाँ के निवासी पाश्चात्यों की ही भाँति तरह-तरह की चाज़ें अपने निरीक्षण में तैयार करते हैं और अपनी जहाज़ी कंपनियों के

जहाज़ों-द्वारा उन्हें बाहर पहुँचाते हैं, और दिन प्रतिदिन मालामाल होते जा रहे हैं।

नये-नये धन्धों के प्रचार से जापान के अनेक नगरों की इतनी अधिक उन्नति हो गई है कि वे मैंचेस्टर और लंकाशायर से टक्कर लेने लगे हैं। इन नगरों के कारख़ानों में मशीनों-द्वारा काम होता है। मशीनों का प्रचार जापान में दिन-दिन बढ़ता जाता है। कपड़े के कारबार के बड़े-बड़े पुतलीघर खुल गये हैं। रेशम और काग़ज़ के भी कारख़ाने हैं। खानों से कोयला भी निकाला जाता है। इन तथा ऐसे ही दूसरे प्रकार के कारख़ानों में जो मशीनें काम में लाई जाती हैं वे भी जापान में ही अब बना ली जाने लगी हैं। दियासलाई बनाने का व्यवसाय भी चमक उठा है। शीशा का धन्धा पुराना है, और घड़ियाँ, दूरबीनें तथा ऐसी ही दूसरी वस्तुएँ भी अब वहाँ बनने लगी हैं। लोहे का कारबार भी जापान में उन्नति पर है। अस्त्र-शस्त्र, इंजिन, गर्डर जैसी चीज़ें भी बनती हैं। रेलगाड़ी की पटरियाँ तथा तत्सम्बन्धी सारा सामान भी जापानियों को बाहर से मँगाने की अधिक ज़रूरत नहीं है। बिजली का कारबार भी ज़ोरों पर है। जहाज़ बनाने के कारबार की तो ऐसी उन्नति हुई है कि वहाँ केवल जंगी जहाज़ ही नहीं बनते हैं, किन्तु व्यापारी जहाज़ भी वहीं के बने काम में लाये जाते हैं। और अपने इसी सारे औद्योगिक विराट् आयोजन की बदौलत आज जापान ने संसार के प्रधान-प्रधान

व्यवसायी राष्ट्रों की प्रतिद्वन्द्विता करने में सफलता प्राप्त की है। परन्तु इस औद्योगिक क्रान्ति का एक बुरा प्रभाव यह हुआ है कि उसकी अपनी देशी कला का ह्रास हुआ है। पाश्चात्य देशों की अन्धाधुन्ध नक़ल करने से पुरानी दस्तकारी लोप-सी हो रही है। परन्तु यह सारा परिवर्तन अभी नगरों तक ही परिमित है। सौभाग्यवश इस ओर स्वयं जापानियों का भी ध्यान गया है और वे अपनी देशी कला की रक्षा की ओर आकृष्ट हुए हैं।

—

ग्यारहवाँ अध्याय

कुछ फुटकर बातें

जापानियों का घर हिन्दुओं के धार्मिक उत्सवों के मण्डप जैसा होता है। उसके चारों कोनों में लकड़ी के खम्भे गड़े होते हैं, जिन पर खपड़ों या फूस की छत ठहरी रहती है। दीवारों के स्थान में टट्टर लगे रहते हैं, जो दिन में हटा दिये जाते हैं। तब सारा घर बाहर से दिखाई देता है। घर का भीतरी भाग यथास्थान काग़ज़ की दीवारें खड़ी करके भिन्न-भिन्न कमरों में विभक्त कर लिया जाता है। उपर्युक्त छत इन्हीं दीवारों पर आश्रित रहती है। उसे सँभालने के लिए धरनों का उपयोग नहीं किया जाता, किन्तु दीवारों को सँभालने के लिए धरनों का उपयोग होता है। घर में आँगन नहीं होता। घर की कुर्सी एक .फुट ऊँची होती है। भूकम्प के भय से जापानी अपने घर ईंट या पत्थर के नहीं बनाते। परन्तु इनके ये लकड़ी-फूस के घर बड़े कामचलाऊ होते हैं। ये .खूब साफ़-सुथरे होते हैं। सभी कमरों में सफ़ेद या भूरी चटाइयाँ बिछी रहती हैं। ये चटाइयाँ ६ .फुट लम्बी, ३ .फुट चौड़ी और डेढ़ .फुट मोटी होती हैं। घर का दरवाज़ा दिन भर खुला रहता है। रात में टट्टर से बन्द कर लिया जाता है।

जापानियों के घरों में गृहस्थी का बहुत बड़ा भाण्डार नहीं होता। उनकी आवश्यकतायें भी थोड़ी होती हैं। उनकी सारी आवश्यक सामग्री घर के एक कमरे में बन्द रहती है। थोड़ी होने पर भी वह तितर-बितर नहीं पड़ी रहती है। किसी भी कमरे में एक भी फ़ालतू चीज़ न पड़ी मिलेगी। जब जिस चीज़ की आवश्यकता होगी उसी गुदामघर से लाई जायगी और काम हो जाने पर फिर वहाँ पहुँचा दी जायगी।

जापानी घर में यह गोदामवाला कमरा बड़ा सुन्दर होता है। उसमें आग लगने का भी डर नहीं रहता और न चोर सेंध ही लगा सकते हैं। वह सिमेंट का बनाया जाता है।

जापानी गृहस्थ की सबसे मुख्य विशेषता यह है कि वह अपना घर ख़ूब साफ़-सुथरा रखता है। वह जूते बाहर उतार देता है और तब घर के भीतर घुसता है। व्यवस्था का यह हाल है कि सारी चीज़ें क़ायदे के साथ यथास्थान रक्खी जाती हैं। कमरों में यदि कुछ होता है तो एक छोटी मेज़ होगी, जिस पर गृह-स्वामी के पसन्द का फूलदान रक्खा होगा, या काग़ज़ का एक छोटा परदा वहाँ लटकता होगा, जिस पर किसी अच्छे चित्रकार के हाथ का कोई चित्र बना होगा। इनके सिवा एक-एक फ़ुट ऊँची कुछ और मेज़ें भी रक्खी होती हैं, जो खाने, चाय पीने या पत्र आदि लिखने के काम आती हैं।

जापानी घर हवादार होते हैं। परन्तु वर्षा में पानी से बचने के लिए लकड़ी के तख़्ते लगाकर कभी-कभी मकान को

अन्धकारपूर्ण कर लेना पड़ता है। जापानी अपने घरों में आग रखने में ख़ूब सावधान रहते हैं। यहाँ तक कि जाड़े में शीत-निवारण करने के लिए वे एक विशेष प्रकार की सन्दूक जैसी अँगेठी में कोयले जलाकर ही तापते हैं, और ये तेल के चिराग़ों या काग़ज़ की लालटेनों से अधिक तेज़ नहीं जलाई जाती हैं। अतएव इन अँगेठियों से जैसा चाहिए, वैसा लाभ नहीं होता। वे इनके पास बैठे काँपते रहते हैं। भूकम्प के आने पर कभी-कभी इन आग की सन्दूक़ों के उलट जाने से आग लग जाती है और उनका लकड़ी-काग़ज़ के घरों का गाँव या नगर बात की बात में स्वाहा हो जाता है। इसी कारण अनेक परिवार अपनी बहुमूल्य वस्तुएँ अपने घरों में नहीं रखते। वे उन्हें बाग़ के उस घर में रखते हैं जिसको आग का भय नहीं होता।

प्रत्येक जापानी-घर की एक विशेषता यह होती है कि उसमें दो पवित्र स्थान रक्खे जाते हैं। इनमें एक 'कामीदान' अर्थात् देवगृह कहलाता है और दूसरा 'बुत्सूदाम' अर्थात बौद्धवेदी। कामीदान लकड़ी का एक साधारण ताख़-सा होता है। वह शिन्तो-धर्म के सम्बन्ध की वेदी है। इस पवित्र ताख़ के बीच में 'तैमा' या 'ओ-नुसा' अर्थात् प्रधान भेंट रक्खी जाती है। यह 'तैमा' 'इसे' के प्रसिद्ध मन्दिर का प्रसाद होता है, जो प्रत्येक वर्ष के अन्त में सारे देशवासियों को बाँटा जाता है। प्रत्येक जापानी इस प्रसाद को अपने घर के 'कामीदान' के बीच में रखता है और उसकी नित्य पूजा करता है। इसे वह

अपने सर्वप्रथम राजकीय पूर्वज का प्रतिनिधि समझता है। इस पर वह चावल, साके (चावल की शराब) और सकाकी वृक्ष के पल्लव चढ़ाता है। प्रतिदिन सबेरे घर के सब लोग उस जगह आते और प्रणाम कर और ताली बजा उसका सम्मान करते हैं। सन्ध्या-समय उस ताख़ में दिया जलाया जाता है।

शिन्तो-जापानी के घर में इस देवस्थान के सिवा एक दूसरा भी स्थान होता है। इस दूसरे स्थान या ताख़ में उसके पूर्वजों की पूजा होती है। इस ताख़ में पूर्वजों के नाम, वय और मृत्यु-तिथियाँ लिखकर रक्खी जाती हैं। ये सब लेख सन्दूक़ची में बन्द करके रक्खे जाते हैं। इसमें भी चावल, साके, मछली, सकाकी वृक्ष के पल्लव चढ़ाये जाते हैं और दीया-बत्ती की जाती है।

बौद्ध-जापानी के घर में कामीदान के सिवा जो दूसरा पवित्र स्थान होता है उसे बुत्सुदम कहते हैं। यह एक प्रकार की वेदी होती है। यहाँ भी पूर्वजों के स्मृति-पत्र रक्खे जाते हैं। इन पर आगे की ओर पूर्वजों के बौद्ध नाम और पीछे की ओर जीवन-काल में प्रयुक्त होनेवाले नाम लिखे रहते हैं। इन स्मृति-पत्रों पर प्राय: वार्निश रहती है। फूल, शिकिमी वृक्ष के पल्लव, चाय, चावल और दूसरे निरामिष भोज्य इन पर चढ़ाये जाते हैं। यहाँ धूप बराबर जलती रहती है। सन्ध्या-समय दीया-बत्ती भी की जाती है।

जापानी लोग अपने पूर्वजों की नित्य पूजा करते हैं। इसके सिवा वे उनकी निधन-तिथियों पर मासिक और वार्षिक पूजायें भी अलग-अलग करते हैं। और यह उनकी पितृ-पूजा वहाँ पिछले ढाई हज़ार वर्षों से बराबर ज्यों की त्यों जारी है। यह इसी भावना का परिणाम है कि आज जापानी अपने देश और सम्राट् को इतनी भक्ति करते हैं, क्योंकि उनके पूर्वजों की हड्डियाँ उनके देश में गड़ी हुई हैं और उनका सम्राट् उनके सर्व-प्रथम राजकीय पूर्वज का जीवित प्रतिनिधि है। राजकीय पूर्वज की पूजा का मुख्य स्थान 'इसे' का दैजिंगू-मन्दिर है। यह देवी का मन्दिर है, क्योंकि राजकीय पूर्वज स्त्री थी। जापानियों का विश्वास है कि देवा अपनी पूजा जारी रखने के लिए अपने उत्तराधिकारी को एक शीशा प्रदान कर गई है। इसके सिवा वह एक खड्ग और एक बहुमूल्य रत्न भी प्रदान कर गई है। ये तीनों स्वर्गीय पवित्र वस्तुएँ उक्त मन्दिर में रक्खी गई हैं और यह मन्दिर जापानियों के लिए वैसा ही पूज्य है जैसे मुसलमानों के लिए मक्का है। अपने जीवन में कम से कम एक बार इस स्थान की यात्रा करना प्रत्येक जापानी, यदि वह यात्रा करने के योग्य है तो, अपना कर्तव्य समझता है।

इस प्रकार जापानियों में पितृ-पूजा को बहुत ही अधिक महत्त्व प्राप्त है। यहाँ तक कि जब कोई विद्यार्थी योरप आदि देशों को पढ़ने के लिए जाता है, जब कोई सैनिक लड़ाई पर

जाता है, जब कोई उच्च राजकर्मचारी सरकारी काम से बाहर भेजा जाता है या कोई व्यापारी व्यापार के सम्बन्ध में लम्बी यात्रा पर जाता है तब वह अपने पूर्वजों की समाधियों का दर्शन करके ही यात्रा का प्रारम्भ करता है।

यद्यपि जन-साधारण फूस और काग़ज़ के घरों में ही रहते आये हैं, तो भी जापान के राजा-रईसों के घर विशाल और भव्य बने होते थे। उनके बड़े-बड़े दुर्ग ऊँची और मोटी परिखा से घिरे रहते थे। उनके चारों ओर खाई होती थी और कोनों पर या उसकी पूरी लम्बाई में दूर-दूर पर छोटे-छोटे मीनार होते थे। भीतर बाग़, उपवन और राजा तथा उसके परिवार और अनुचरों के रहने के लिए घर बने होते थे। किसी-किसी दुर्ग के बीच में भी एक वैसा ही मीनार होता था। ये दुर्ग गाँवों और नगरों के बाहर कुछ दूर ही बने होते थे। परन्तु अब राजाओं के ऐसे पुराने दुर्ग दिन प्रतिदिन नष्ट होते जाते हैं। कुछ अभी अच्छी दशा में पाये जाते हैं। इनमें नगोया का दुर्ग सबसे बड़ा है।

परन्तु अब नगरों में लोग अपने घरों के बनाने में ईंट-पत्थर का उपयोग करने लगे हैं। सरकारी इमारतें प्रायः योरपीय ढङ्ग की बनती हैं और इनमें ईंट-पत्थर का पूरा-पूरा उपयोग होता है।

जापानी स्नान के बड़े प्रेमी होते हैं। स्त्री-पुरुष दोनों को स्नान से प्रेम होता है। इसी से वहाँ के नगरों में स्नानागारों की अधिक संख्या पाई जाती है। इनमें सभी श्रेणी के

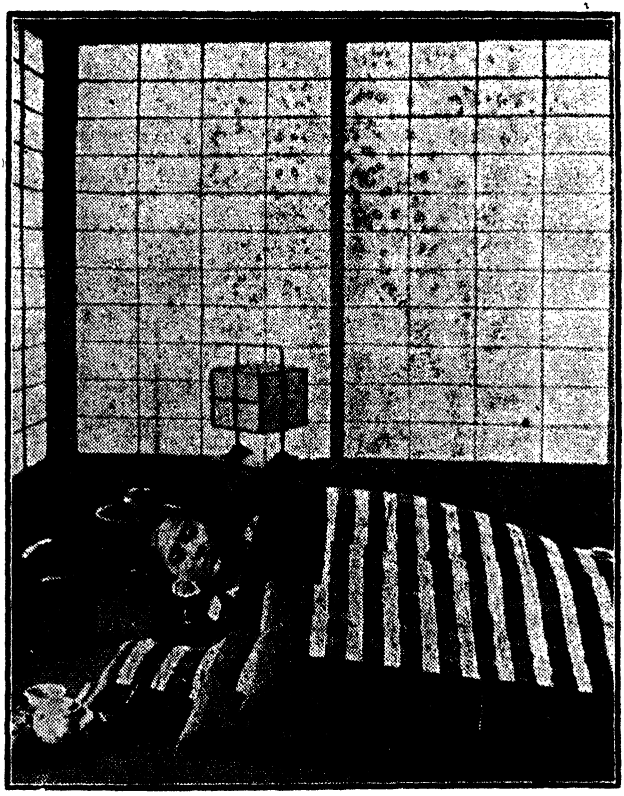
लोग स्नान करते हैं। अभी तक स्त्री-पुरुष और लड़के-लड़कियाँ सभी एक ही साथ स्नान करते थे, परन्तु अब बड़े-बड़े नगरों के सार्वजनिक स्नानागारों में रेलिंग लगाकर स्त्रियों और पुरुषों को स्नान करने का अलग-अलग प्रबन्ध कर दिया गया है। यहाँ स्नान करने के लिए लकड़ी के बने कुण्डों में जो पानी भरा रहता है वह पीछे की ओर से गरम होता रहता है। क्योंकि जापानी लोग गरम पानी में ही स्नान करना पसन्द करते हैं। ये कुण्ड ८ से १० फ़ुट लम्बे, तीन या चार फ़ुट चौड़े और साढ़े तीन फ़ुट गहरे होते हैं। प्रत्येक स्नानागार में ऐसे दो कुण्ड होते हैं। एक में स्त्रियाँ स्नान करती हैं और एक में पुरुष। जल-कुण्ड में प्रवेश करने के पहले स्त्री और पुरुष दोनों कुण्ड के कुछ चुल्लू पानी से अपनी देह को वहीं फ़र्श पर बैठकर धोते हैं और अच्छी तरह रगड़ते हैं। इसके बाद वे फिर पानी डालते हैं और तब कुण्ड में प्रवेश करते हैं। परन्तु बाहर का यह स्नान पुरुष स्त्रियों की अपेक्षा जल्दी कर लेते हैं। इन कुण्डों में बहु-संख्यक स्त्री-पुरुष स्नान करते हैं। कहीं-कहीं तो एक-एक कुण्ड में ३०० आदमी तक स्नान कर जाते हैं। इनका जल दिन में केवल एक बार बदला जाता है।

ऊँची श्रेणी के लोगों के घरों में एक कमरे में स्नान करने के लिए एक लकड़ी का टप होता है। इसका पानी गरम करने के लिए इसकी अँगेठी भी इसके साथ होती है। पानी के गरम होने पर लोग स्नान करने लगते हैं। पहले पिता,

तब माता और उसके बाद बच्चे स्नान करते हैं। अन्त में घर के नौकर भी उसी में स्नान करते हैं।

देहातों में जगह-जगह गरम जल के पहाड़ी झरने पाये जाते हैं। ऐसे झरनों का आधिक्य अन्य देशों में नहीं है। ये प्राकृतिक झरने सारे देश में फैले हुए हैं। इनके जल में स्नान करने से अनेक रोग भी दूर हो जाते हैं। इस कारण इनमें स्नान करने के लिए बाहर से भी लोग आते हैं। इस प्रकार इनमें प्राय: लोगों का जमाव बना रहता है और लोग यहाँ परस्पर मिल-जुलकर आनन्द के साथ अपना समय व्यतीत करते हैं। ऐसे स्थानों में विद्यार्थी लोग अधिक संख्या में जाते हैं। स्नान के बाद एवं परिश्रम के बाद भी जापानी लोग देह दबवाते हैं। वहाँ के अन्धे इस काम में बड़े निपुण होते हैं।

जापानियों की पोशाक हलकी और सुखद होती है और सभी लोग एक ही-सी पोशाक पहनते हैं। पोशाक भी उनकी विचित्र होती है। वे सिर्फ़ कपड़ों को लपेट भर लेते हैं। यहाँ तक कि शीतकाल में भी वे इसी प्रकार कपड़ों का व्यवहार करते हैं। हाँ, नगर-निवासी अलबत्ता शीतकाल में अब योरपीय ढङ्ग के कपड़ों का उपयोग करने लगे हैं। ये लोग रेशमी या सूती वस्त्र का उपयोग करते हैं। नगरों में बिना अच्छी तरह कपड़े पहने आने-जाने की रोक रहती है। अतएव कुलियों और मज़दूरों को विशेष रूप से सावधान रहना पड़ता है। परन्तु



जापानियों के सोने का ढङ्ग

प्रतिष्ठित लोगों में योरपीय पहनावे का प्रचार हो चला है। जापानी लोग प्राय: टोपी नहीं लगाते, परन्तु कभी-कभी तृण की या भारी पालिशदार टोपी देते हैं। शहरों में अँगरेजों की हैट टोपी का अधिक प्रचार हो गया है। देहात में वर्षा से अपने कपड़े बचाने के लिए मोमजामे या तृण के बड़े-बड़े ओवरकोट भी पहने जाते हैं। परन्तु बहुत-से लोग सिर्फ़ लुंगी लगाये और काग़ज़ का छाता ताने हुए ही वर्षा में आते-जाते हैं। स्त्रियों का पहनावा पुरुषों जैसा ही होता है। उनके पहनावे में विशेषता इस बात की रहती है कि वे एक प्रकार की बड़ी चादर-सी पहनती हैं।

जिस ढङ्ग से जापानी कपड़ा लपेटता है उससे उसकी छाती खुली रहती है। छाती का कुछ अंश खुला रखना वहाँ की चाल है। ये कपड़े कमरबन्द से कमर के पास बाँध लिये जाते हैं, बाक़ी ढीले-ढाले लटकते रहते हैं।

जापानी लोग चावल या दूसरे अन्न, मछली, अंडे, भिन्न-भिन्न प्रकार की समुद्री चीज़ें और तरकारियाँ खाते हैं। बौद्ध-धर्म के प्रभाव से वे मांस खाने के विरुद्ध थे, यही नहीं अंडे और दूध-घी नहीं खाते-पीते थे। परन्तु पाश्चात्यों की देखा-देखी अब फिर कोई-कोई खाने लगे हैं। मांस यदि पहले खाया भी जाता था तो हिरन का और सो भी पहाड़ी ह्वेल के नाम की आड़ में धर्म-भाव से ही। जापानी दूध, मक्खन, पनीर नहीं खाते हैं और न चर्बी का ही उपयोग करते हैं। उनका मुख्य पेय

चाय है। मिल जाने पर चावल की शराब भी पीते हैं। इसके सिवा स्त्री-पुरुष दोनों तम्बाकू भी पीते हैं। पाश्चात्यों के संसर्ग से सिगरेट का अधिक प्रचार हो गया है। अप-टु-डेट नागरिक हलकी बियर शराब भी पीने लगे हैं।

परन्तु जापानियों का मुख्य खाद्य चावल है। हमारे भारत के बंगवासियों की भाँति वे भी चावल ही खाते हैं। राव-रङ्क सभी इसे खाते हैं। चावल भी वहाँ का बढ़िया होता है। भोजन के समय यह गरम ही गरम परोसा जाता है। चावल के साथ वे तरकारी, मछली आदि खाते हैं। इसके सिवा समुद्र में पाई जानेवाली प्रायः सभी चीज़ें वे खाते हैं। खाने के समय बीच-बीच में बिना शक्कर की गरम चाय भी पीते जाते हैं। भोजन में जिन बर्तनों का उपयोग करते हैं वे सुन्दर और साफ़ रहते हैं। वे हाथ से नहीं खाते हैं, किन्तु लकड़ियों की सहायता से खाते हैं और फ़र्श पर बैठकर खाते हैं। जो लोग पाश्चात्य-सभ्यता के प्रेमी हैं वे छोटी-छोटी मेज़ों पर भोजन सजाकर खाते-पीते हैं।

जापानियों को सफ़ाई बहुत पसन्द है और वह भोजन के समय और भी अधिक दिखाई देती है। भोजन परोसने में भी वे बड़ी सफ़ाई से काम लेते हैं, यहाँ तक कि परोसने की क्रिया में भी वे कला दिखाते हैं। ख़ासकर चाय परोसने में। जापान में चाय पीने का बड़ा रवाज है। वहाँ के नगरों में चाय-घरों की बड़ी अधिकता है। यहाँ उनके चाय परोसने का ढङ्ग

देखते ही बनता है। लोग इन चाय-घरों में अपने इष्ट-मित्रों को चाय पिलाते हैं। चाय प्रायः लड़कियाँ ही बाँटती हैं।

जापानी लोगों को व्यायाम से भी बड़ा प्रेम है। उनमें मल्ल-विद्या और पटेबाज़ी का बड़ा प्रचार है। यहाँ तक कि इन दोनों कलाओं ने वहाँ जनता के आमोद-प्रमोद का रूप ग्रहण कर लिया है। यहाँ इनके दंगल समय-समय पर लगते हैं, जिनके देखने को लोगों की बड़ी भारी भीड़ एकत्र होती है।

परन्तु जापानी पहलवान भारतीय पहलवानों की भाँति अपने शरीर को कसरती नहीं बनाते हैं। उनके शरीर मोटे और फूले हुए होते हैं। लँगोट चढ़ाकर कुश्ती लड़ते हैं। उनका अखाड़ा ज़मीन से २ फ़ुट ऊँचा गोलाकार होता है, जिसका व्यास २० फ़ुट होता है। जब जोड़ा अखाड़े में उतरता है तब वहाँ चुपचाप बैठ जाता है। पंच के आ जाने पर कुश्ती लड़नेवाले खड़े हो जाते हैं और एक दूसरे को ताकते हैं। पंच के संकेत करते ही जोड़ भिड़ जाता है। यदि एक पहलवान दूसरे को अखाड़े की सीमा के बाहर धकेल देता है तब वह जीत जाता है। पंच इसकी सूचना दे देता है। इस प्रकार जीत जानेवाला दूसरे पहलवानों से भिड़ता है। अन्त में जिसकी जीत होती है वही सबसे बढ़कर पहलवान समझा जाता है। इस प्रकार के दंगल जापान में प्रायः होते रहते हैं। इनको देखने को लोग ख़ूब जुटते हैं, और जब कोई पहलवान जीतता है तब लोग बड़ा उल्लास दिखाते हैं।

परन्तु जापानी मल्ल-विद्या की अपेक्षा जुजित्सु में अधिक प्रवीण होते हैं। जुजित्सु उनकी एक ख़ास जातीय कला है। जो जापानी जुजित्सु जानता है वह अपने से दूने बलवान् मल्ल को पछाड़ सकता है। जुजित्सु जाननेवाले ने अपने प्रतिद्वन्द्वी की देह का कोई अङ्ग पकड़ा नहीं कि पलक मारते ही उसे ऐसा पटकता है कि वह उसके क़ाबू में हो जाता है। बात यह होती है कि जुजित्सु के जाननेवाले को शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों की कुछ ऐसी नसों का पता रहता है कि उनके दबा देने मात्र से प्रतिद्वन्द्वी बेचारा बेबस हो जाता है और फिर वह अधिक बलवान् होने पर भी अपने प्रतिद्वन्द्वी का कुछ बना-बिगाड़ नहीं सकता। इस कला के ज्ञाता जापानी इसका उपयोग बड़े सङ्कट में लाचार हो जाने पर करते हैं। परन्तु इस कला की शिक्षा सब किसी को नहीं दी जाती है और न इसके ज्ञाता पुरस्कार के लोभ से इसका प्रदर्शन ही करते हैं। यह उनकी आत्मरक्षा की एक अनूठी विद्या है।

पटेबाज़ी का अभ्यास तो वहाँ के सभी श्रेणियों के लोग करते हैं। इसका अभ्यास इसलिए किया जाता है कि दोनों हाथों तलवार चलाने में निपुणता प्राप्त हो। पटेबाज़ी का अभ्यास करनेवाले अपने सिर और गर्दन को बचाने के लिए शिरस्त्राण धारण करते हैं। इसमें मुँह की ओर लोहे की छड़ें लगी रहती हैं और गर्दन पर मोटे परदे पड़े रहते हैं। इसके सिवा देह पर बाँस और चमड़े का कवच पहनते हैं और ऐसा ही

कवच कमर के नीचे के अङ्ग की रक्षा के लिए भी रहता है। इस प्रकार सुरक्षित होकर पटेबाज़ी सीखनेवाले पटेबाज़ी का अभ्यास करते हैं। परन्तु वार चूक जाने पर एक दूसरे के जब चोट लगती है, चोखी लगती है, बचाव की सामग्री वैसा काम नहीं देती है। इसमें भी हार-जीत होती है। जो व्यक्ति जिसके सिर का आवरण तोड़ देता है वही जीता समझा जाता है।

एक प्रकार की पटेबाज़ी का प्रचार जापानी स्त्रियों में भी है। ये अपना अभ्यास भाले से करती हैं, जिसका सिरा अँकुरी-सा झुका रहता है। ये उसके नुकीले सिरे को ज़मीन की ओर रखती हैं।

वास्तव में जापानी पटेबाज़ी और जुजित्सु की कला में बड़े प्रवीण होते हैं। इनमें उनकी अन्य लोग बराबरी नहीं कर सकते।

नौकरों-चाकरों के सम्बन्ध में जापानियों के अनोखे विचार हैं। किसी के घर टहल-सेवा करना वे अपमानजनक तथा नीच काम नहीं समझते। परन्तु रिक्शा गाड़ी चलाना और झाड़ू देना नीच काम समझते हैं। इन कामों के करनेवाले जापान में अछूत समझे जाते हैं। इसका कारण यह है कि झाड़ू देनेवाले धोखेबाज़ और जुआरी तथा रिक्शावाले अविनयी समझे जाते हैं।

जापानी टहलुए अपने काम में बड़े निपुण होते हैं। गृह-स्वामी की अनुपस्थिति में वे अतिथि का बड़े आदर-भाव से सत्कार

करते हैं। यही नहीं, मालिक के आने तक वे उसे अपनी बातचीत से बहलाये रहते हैं। अतएव वहाँ के नौकरों को अपने कर्तव्यों के ज्ञान के सिवा समाज के नियमों और क़ायदों से भी भले प्रकार परिचित रहना पड़ता है।

जापानी गृह-स्वामी भी अपने नौकरों के साथ अच्छा व्यवहार करता है। वे उनके साथ उठ-बैठ सकते हैं और उनकी आपस की बातचीत में भी भाग ले सकते हैं। जापान में नौकरों की संख्या अधिक है, पर उन्हें वेतन कम मिलता है। जो कमरा नौकर को रहने के लिए मिलता है उसमें वह अपनी स्त्री और माता-पिता को भी रखता है और जो वेतन उसे मिलता है उस पर सन्तोष के साथ निर्वाह करता है। जापान में नौकर दो प्रकार के होते हैं—एक टहलुए और दूसरे भोजन-गृह के।

जापानी नौकर मौज करने के लिए अपना काम जल्दी-जल्दी नहीं करते और न वे अपने काम को बुरा ही समझते हैं। वे अपने को कृषक, व्यापारी या कारीगर से ऊँचा समझते हैं। धनवानों या पुराने घराने के लोगों में नौकरों की अधिकता रहती है, और वहाँ ऐसी नौकरी अनेक कुलीन लोग तक करते हैं। सेवा-टहल करना भारत की भाँति जापान में नीच पेशा नहीं समझा जाता है।

परन्तु जापानी मज़दूरों में रिक्शा गाड़ी खींचनेवाले वहाँ की एक मुख्य वस्तु हैं। जापान में घोड़ों आदि का उपयोग रईस लोग ही करते हैं। आम तौर से वहाँ रिक्शा गाड़ियों

का ही प्रचार है। इन्हें आदमी खींचते हैं। ये लोग बड़े तेज़ चलनेवाले होते हैं।

जापानी लोग बाग़वानी के काम में बड़े निपुण होते हैं। इस निपुणता का मूल-कारण यह है कि उन्हें फूल-पत्ती से स्वाभाविक प्रेम होता है। यहाँ तक कि प्रत्येक जापानी अपने घर के एक हिस्से में ज़रूर फुलवाड़ी लगायेगा, उसका घर कितना ही छोटा क्यों न हो। और वे फुलवाड़ी लगाते भी बड़ी सुन्दर हैं। दस फ़ुट वर्ग भूमि में वे बाग़ खड़ा कर देंगे, जो अनेक रविशों-द्वारा विभक्त होगा। यदि किसी जापानी के घर के पास ही एक एकड़ भूमि मिल गई और वह सम्पन्न हुआ तो उस एकड़ भर भूमि को वह एक सुन्दर उद्यान में परिणत कर देगा। वृक्षों और फूल-पत्तियों एवं तृण-खण्डों के सिवा नदी, झील और टापुओं एवं पुलों के दृश्यों से वह भू-भाग अनुपम रूप धारण कर लेगा। कुछ इंच चौड़ी और कुछ इंच गहरी एक पहाड़ी नदी भी उसमें बहती रहेगी। उस पर जगह-जगह तरह-तरह के छोटे-छोटे पुल बने होंगे। यदि कोई बराबर होगा तो कोई सूअर की पीठ-सा होगा। ऐसे स्थानों में पुल बनाने का उनका प्रेम ख़ूब दिखाई देता है। नदी के सिवा एक झील भी होगी। झील में जगह-जगह छोटे-छोटे टापू होंगे। कुछ टापू परस्पर पुल-द्वारा जुड़े होंगे, कुछ पर प्रकाश-दीपक, कुछ पर बौद्ध-मन्दिर तो कुछ पर चट्टानों के नमूने बने होंगे। इस प्रकार वे अपने बाग़ प्राकृतिक दृश्यों तथा

तरह-तरह के वृक्षों से सजाकर अपने प्रकृति-प्रेम का परिचय देते हैं। हाँ, इस सम्बन्ध में यदि त्रुटि है तो इस बात की कि वे वृक्ष फूलों के लिए लगाते हैं, फलों के लिए नहीं। वृक्षों को यदि वे फलने देते हैं तो इसी लिए कि वे दूसरी बार फूलेंगे। वे उन्हें स्वाभाविक रूप से बढ़ने नहीं देते, किन्तु उन्हें ऐसे ढङ्ग से बढ़ाते हैं कि उनकी रुचि के अनुसार किसी वस्तु या जीव का रूप धारण कर लेते हैं। और बड़े-बड़े वृक्षों को बौना रूप प्रदान करना तो उनकी एक ख़ास कला है। इसी प्रकार झाड़ियों को भी वे नाना प्रकार की वस्तुओं या जीवों का रूप प्रदान करते हैं। वास्तव में जापानी बाग़ जहाँ उनकी सुरुचि का परिचय देते हैं, वहाँ उनकी बाग़ लगाने की श्रेष्ठ कला का भी प्रमाण देते हैं।

जापान में मृतक-संस्कार भी अनूठा होता है। जब किसी वृद्ध या प्रतिष्ठित व्यक्ति की मृत्यु होती है तब उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया बड़ी धूम-धाम से होती है, और वह ख़ासे उत्सव का रूप धारण कर लेती है। मृतक के परिवार के सब मित्र सूचना पाते ही उसके घर आते हैं। उनमें अधिकांश अपने साथ कुछ न कुछ अवश्य लाते हैं। उसके मित्रों में जो धनी होते हैं वे रुपया लाते हैं। दूसरे लोग रोटियाँ, चावल की शराब, मिठाई या भिन्न-भिन्न प्रकार की खाने की चीज़ें लाते हैं। अन्य लोग बाँस की पोल में या फूलदान में फूल सजाकर लाते हैं। मृतक के घर आने पर प्रत्येक व्यक्ति घर के पूजा-घर के सामने

जाकर दोनों हाथों से प्रणाम करता है। इसके बाद अपनी भेंट वहाँ रख देता है। फिर खाना-पीना शुरू होता है, जो किसी-किसी के घर दूसरे दिन के दोपहर को जाकर समाप्त होता है।

मृत्यु होने के दूसरे दिन पुरोहित आते हैं। तब शव एक बड़े भारी ताबूत से बर्तन में रक्खा जाता है। शव के चारों ओर महकनेवाली पत्तियाँ तथा फूल दबाकर भर दिये जाते हैं। इसके दूसरे दिन लाश प्रायः एक सफ़ेद रंग के सन्दूक़ में रक्खी जाती है और सफ़ेद कफ़न से ढाँक दी जाती है। इसके बाद नौकर लोग सन्दूक़ को उठाकर मन्दिर को ले जाते हैं। ये नौकर इस अवसर पर सफ़ेद कपड़े पहनते हैं। कभी-कभी लाश के आगे कुछ गानेवाले सफ़ेद पोशाक में घण्टे लेकर चलते हैं। शव के पीछे कुटुम्बी और इष्ट-मित्र चलते हैं। इस प्रकार शव का जुलूस मन्दिर को जाता है। वहाँ पहुँचने पर शव वेदी पर रख दिया जाता है। इस अवसर पर पुरोहित लोग प्रार्थना करते हैं। प्रार्थना के समय एक-एक करके अन्य सभी साथ के लोग आगे आ-आ पुरोहितों को प्रणाम करते हैं और चिता के आगे घुटने के बल हो नतमस्तक होते हैं। इसके बाद धूपदान से एक चुटकी धूप लेकर आग में छोड़ते हैं। यह काम करके वे फिर नतमस्तक होते हैं और तब वे अपने स्थान को लौट जाते हैं। यह सब कुछ हो जाने पर बर्तन के सहित शव को जलाने के स्थान में ले जाते हैं। वहाँ

शव को बड़ी सावधानी और श्रद्धा से बर्तन से बाहर करते और उसे सफ़ेद कपड़े से लपेटते हैं। तब पुरोहित उसे भट्ठी में धीरे से खिसका देते हैं, जहाँ वह बिलकुल भस्म कर दिया जाता है।

जिस समय लाश जलती रहती है, लाश के साथ आने-वाले लोग साके पीते और भोजन करते तथा मृत व्यक्ति के गुणों का बखान करते हैं। यदि लाश जल्दी ही अच्छी तरह जल जाती है तो यह बात अच्छी समझी जाती है।